नैतिक-आध्यात्मिक विमर्श की पत्रिका • महासभा का गौरवशाली प्रकाशन

जैन भारती

अप्रैल 2024 वर्ष 72 अंक : 4 मूल्य : 50/-

मोक्ष

क्षायिक सम्यक्त्व

यथाख्यात चारित्र

अनन्त दर्शन

अनन्त ज्ञान

सर्वगुणसम्पन्नता

हमारे शरीर के भीतर चैतन्य तत्त्व विराजमान है। जैसे मंदिर में मूर्ति होती है, उसी प्रकार शरीर के भीतर चैतन्य अवस्थित है। चैतन्य शुद्ध ज्योतिर्मय निरामय रूप वाला है। आत्मा में अनंत शक्ति होती है, किन्तु वह शक्ति सबकी सर्वदा प्रकट नहीं रहती, सुसुप्त अवस्था में रहती है। जीवन में शक्ति का काफी महत्त्व होता है। आदमी को उसके जागरण, विकास और सदुपयोग का प्रयत्न करना चाहिए। योग एक ऐसा तत्त्व है, जिसके द्वारा शक्ति की सुरक्षा और विकास भी हो सकता है। योग आज बहुत प्रसिद्ध हो गया है। आचार्य हेमचंद्र ने संस्कृत कोष अभिधान चिन्तामणि में कहा है—'मोक्षोपायो योगो ज्ञान श्रद्धानचरणात्मकः' मोक्ष का उपाय योग है। वह मुख्यतया तीन रूपों में है—सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र। मोक्ष से जोड़ने के कारण धर्म की सारी प्रवृत्ति अपने आप में योग है।

आचार्य महाश्रमण

अध्यक्ष की कलम से...

ऊँची सोच के साथ बड़े लक्ष्य को कामयाब करना ही पुरुषार्थ है। लक्ष्य व्यक्ति के अपने जीवन का हो सकता है, परिवार से संदर्भित हो सकता है, सामाजिक परिवेश के सम्बन्ध में हो सकता है, देश-दुनिया के बारे में हो सकता है, संस्था और संगठन के विषय का भी हो सकता है। चिन्तन की कसौटी पर जाँच-परख करने के बाद जो बिन्दु निर्धारित कर लिए जाते हैं, वे लक्ष्य की श्रेणी में आ जाते हैं। लक्ष्य की लक्ष्मण-रेखा खिंच जाने के बाद कदमों को पीछे खींचना ठीक नहीं होता। यहीं से तो सही मायने में कर्तृत्व की यात्रा प्रारंभ होती है।

एक बार कई बीमारियाँ एक-साथ संगठित होकर पहाड़ के पास पहुँची और बोली—'दुनिया में सभी हमें ठुकराते हैं, सभी दुत्कारते हैं, सभी गालियाँ तक देते हैं। गले लगाने की बात तो दूर, हमें कोई दो-चार दिन चैन से टिक कर रहने के लिए स्थान भी नहीं देता। हम भटक-भटक कर परेशान हो गई हैं। हमने सुना है कि पहाड़ अटल होता है, सहनशील होता है। यह भी सुना है कि भले ही वह अभेद एवं कठोर हो परन्तु उसके अन्तस्थल में दया और करूणा की पाषाणी प्रवाहित होती रहती है। हम काफी आशा लेकर आपकी शरण में आई हैं। आप अनुग्रह करें तो हमें ठिकाना मिल जाए। आप आसरा दे दें तो हमारी सारी समस्या दूर हो जाए।'

पहाड़ ने मौन-मूक भाषा में 'एवमऽस्तु' कहा और सभी को अपने अन्दर आश्रय दे दिया।

पहाड़ के सामने किसानों की एक बस्ती थी। किसानों ने आपस में मिलकर सोचा कि क्यों न इस पहाड़ को समतल करके कृषि-योग्य समतल भूमि तैयार कर ली जाए। अच्छे चिन्तन का सभी ने स्वागत किया और दूसरे ही दिन सुबह-सुबह पहाड़ को तोड़ने का काम प्रारंभ हो गया। सुबह से शाम तक पहाड़ का कुछ हिस्सा कटा।

पहाड़ चिंतित था। कटाई की प्रक्रिया एक-दो महीने तक जारी रही तो शायद मेरा अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा, इस चिन्तन से वह भीतर तक आहत हो गया। पहाड़ ने अपने अस्तित्व को रक्षा के सन्दर्भ में चिन्तन किया और उसने एक उपाय ढूंढ़ ही लिया। उसने अपनी दरारों के भीतर चैन की साँस लेती हुई बीमारियों को जागृत किया और उनसे कहा—'तुम सभी कुछ दिनों के लिए मेरा आश्रय छोड़कर बस्ती के किसानों के पास चली जाओ और उनसे चिपक जाओ। किसान बीमार पड़ जाएंगे और मुझे काटने का काम बन्द कर देंगे। अन्यथा मैं तो कट-कट कर समाप्त हो ही जाऊँगा, तुम्हें भी इस अवधि में चोटें खानी पड़ेंगी।

बीमारियों ने रातों-रात अपना ताम-झाम समेटा और रात्रि की सघन निद्रा में विश्राम कर रहे किसानों के शरीर से चिपट गई। हफ्ता-दो-हफ्ता बीता—परन्तु पर्वत के कटने का क्रम निरन्तर जारी रहा।

अचानक एक रात अपना मायूस-सा चेहरा लेकर सभी बीमारियाँ पर्वत के पास आई। उनको देखते ही पहाड़ ने उनसे पूछा—'क्या तुमने मेरे आदेश का पालन नहीं किया? मैं प्रतिदिन उसी रफ्तार से कटता-टूटता जा रहा हूँ। क्या तुम्हारे प्रभाव से किसानों का शरीर प्रभावित नहीं हुआ?

बीमारी ने कहा—'हम बस्ती में गई थीं। हम किसानों के शरीर से चिपट भी गई थीं। किसान ने अपना नियमित टाइम-टेबल बना रखा है। पहाड़ काटने के समय वह बीमारी की हालत में आता है और सब-कुछ भूलकर कटाई के काम में लग जाता है। दिन-भर के कठिन श्रम से उसे पसीना निकलता रहता है और पसीने के साथ बहकर हम बीमारियाँ भी उसके शरीर से बाहर आ जाती हैं। धुन का

धनी और श्रम का पुजारी कभी थकता नहीं, कभी बीमार पड़ता नहीं। हमें तो किसान जैसे असमर्थ व्यक्ति के पास भी स्थायी आसरा नहीं मिल पाया।

इससे यह साबित होता है कि पुरुषार्थ के उजले पृष्ठों पर वही व्यक्ति एक सफल गाथा लिख सकता है जो धुन का धनी होता है, लगन का पक्का होता है, अवरोधों के आने पर भी रूकता नहीं, झंझावातों की चोट से झुकता नहीं। जिसके शब्दकोष में अनहोनी और असम्भव जैसे शब्द होते ही नहीं है। वह लक्ष्य की ओर बढ़ता रहता है। सफलता के द्वार तक पहुँचने के लिए कुछ आवश्यक बिन्दु हैं जिन्हें हम रेखांकित कर सकते हैं। ये बिन्दु हैं—उत्साह, विश्वास, संकल्प, सम्पर्क और संयुक्ति।

कोई भी कार्य-योजना जब हम हाथ में लेते हैं तो उसे संपादित करने के लिए पहली शर्त होती है—उत्साह। योजना मिलते ही मन में खुशी का एहसास हो, कर्मजा शक्ति करवटें लेने लगे और चेतना में गौरव की अनुभूति होने लगे। अगर मन में उत्साह नहीं है और आपने यह सोच लिया कि हमें जो दिया गया है उस काम को जैसे-तैसे करना है—तो काम करने का असली मजा नहीं आएगा और उसकी सफलता भी आधी-अधूरी हो जाएगी। हर कार्य-दायित्व को उत्साह के साथ प्रारंभ करें। दूसरी शर्त है—विश्वास। मन में निश्चय होना चाहिए कि हम इस काम को सही रूप में कर सकेंगे और सफल होंगे। तीसरी शर्त है—संकल्प। मन में यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम पूर्ण निष्ठा के साथ तथा श्रम का योगदान देकर पूर्ण समय का नियमित नियोजन करके काम करेंगे और सफलता के मुकाम तक अवश्य पहुंचेंगे। चौथी शर्त है—सम्पर्क। आप समाज के सामने जाएँ, अपनी योजना और कार्यों की बात लोगों के सामने रखें। सम्भव है कि प्रारंभ में कुछ अटपटा लगे, लोगों से बात करने में थोड़ी झिझक व संकोच हो। परन्तु धीरे-धीरे मेल-जोल बढ़ाएँ, लोगों को काम से होने वाले फायदे बताएँ, विकास की बात करें। आपका निरन्तर सम्पर्क बढ़ता जाएगा, आपका दायरा बढ़ता जाएगा। धीरे-धीरे समाज आपके कार्यों को स्वीकार करेगा। पांचवी शर्त है—संयुक्ति। समाज पर आपकी बात का प्रभाव पड़ेगा तो समाज अवश्य आपके साथ जुड़ेगा। दूसरे व्यक्ति जब आपके साथ जुड़ेंगे और आपके साथ कार्य में रूचि लेंगे तो आपका कार्य शतगुणित होगा। आपको जहाँ भी लगे कि यह व्यक्ति उपयोगी हो सकता है तो उसे अवश्य जोड़िए।

इक्कीसवीं शताब्दी को एक रूप में हम मैनेजमेंट का युग भी कह सकते हैं। हर काम को हाथ में लेने से पहले उसकी सांगोपांग समीक्षा की जाती है और सबसे पहले उसका लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। काम कितना करना है और किन-किन हितों के लिए करना है, यह सर्वप्रथम तय किया जाता है। सम्पूर्ण प्रक्रिया तक हमें लक्ष्य पर केन्द्रित होकर चलना पड़ता है। साधन-सामग्री की जितनी उपलब्धता हो, उससे लक्ष्य थोड़ा ऊँचा बनाना चाहिए। आपको महसूस होता रहे कि आपको अपनी क्षमता से थोड़ा अधिक कार्य करना है। लक्ष्य निर्धारण में हमेशा चिन्तनशील व्यक्तियों का परामर्श लेना चाहिए और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमेशा श्रम-शील व्यक्तियों का सहयोग लेना चाहिए। फिर आपने जितनी कार्य-योजना सोची है, तैयार की है, वह सम्पादित होगी और अवश्य सफलता मिलेगी। कभी भी लक्ष्य छोटा न बनाएँ। उसके पाँव ठिठक जाते हैं, जिसने छोटा लक्ष्य बनाया।

किसी व्यक्ति ने एक छोटे-से बच्चे से पूछा कि यदि तुम्हें देश का प्रधानमंत्री बना दिया जाए तो तुम क्या करोगे? बच्चा छोटा था, उसकी सोच भी छोटी थी। उसने कहा कि यदि मैं देश का प्रधानमंत्री बन जाऊँगा तो सबसे पहले लाल किले पर चढ़कर पतंग उड़ाऊँगा। सोच छोटी होती है तो लक्ष्य भी छोटा होता है। हमारा उद्देश्य होना चाहिए कि हम कर्तृत्व की बड़ी और उत्कृष्ट लकीरें खींचे।

आवश्यकता है—कर्तृत्व की यात्रा प्रारंभ करने की, कर्मजा शक्ति की उच्छल जल-तरंगों में स्नान करने की, लक्ष्य तक पहुँच कर चैन की सांस लेने की, हर रात के बाद एक मंगल प्रभात लाने की। रचते रहें हम सदैव पुरुषार्थ के नए-नए छन्द।

मनसुख सेठिया

सम्पादकीय

भारत में एक कहावत प्रचलित है–'**अतिथि देवो भवः**' अतिथि यानि मेहमान देवता के समान होते हैं। देव या भगवान अल्प समय के लिए पधारते हैं, अपनी दिव्य ज्योति से खुशियों का प्रकाश फैला देते हैं, वरदान की सौगात से हमारी झोली भर देते हैं, इसलिए उनकी भक्ति करना जीवन को सार्थक बनाता है। वैसे ही मेहमान भी अपनेपन व खुशियों की सौगात लेकर हमारे घर-आंगन में आते हैं और कुछ पल आत्मीयता के बिताकर मीठी यादें छोड़कर चले जाते हैं। किन्तु युग के साथ-साथ परिदृश्य भी बदलता जा रहा है। अब अतिथि को भगवान नहीं माना जाता, भार माना जाता है। जीवन-शैली बदली और जीने का नजरिया बदल गया। जीवन-यापन की भाग-दौड़ में रिश्ते चटक गये और अपनापन छूट गया। जब-जब इस समस्या का समाधान खोजने का प्रयास किया गया कुछ अधबुने ताने या टूटे हुए धागे ही हाथ लगे।

क्या है इसका कारण? देव देव नहीं रहे और याचक याचक नहीं रहे। अतिथि तुम कब जाओगे? यह स्थिति उत्पन्न होने के कई कारण सामने दिखाई देने लगे। पहले लोग सहज, सरल, सद्गुणों की सौरभ लेकर अपनों के घर आते और उनके घर के रूखे-सूखे को भी प्रसाद मानकर खा लेते। अपने नेह और आशीर्वाद से उनके मन को तरोजाता कर देते। वर्तमान में छप्पन प्रकार के भोजन भी परोसने पर आपस में अपनेपन का स्वाद कहीं गायब होता है। इस भार स्वरूप आतिथ्य से छुटकारा पाने के लिए कभी होटल या पिक्चर का भी सहारा लिया जाता है, मगर अतिथि देवता नहीं बन पाता। आतिथ्य का सुस्वाद भी गुणीजनों से ही आता है।

सच ही कहा गया है कि पूजा नाम की नहीं गुणों की होती है। सद्गुणों की सुवास दूर तक फैलती है। सद्गुणों से जीवन की सुरक्षा होती है, व्यक्ति का जीवन सुखी, संतुलित और शांतिमय बन जाता है। आचार्य तुलसी कहते हैं कि 'सद्गुणों से समृद्ध बनने वाली आत्मा एक दिन परमात्मा बन सकती है।' परमात्मा बनने के लिए दो सद्गुण अत्यंत आवश्यक है–श्रद्धा और समर्पण। समर्पण यानि गुरु के प्रति विनय, उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन विनयश्रुत में बताया गया है कि जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन करता है, गुरु की शुश्रुषा करता है, गुरु के इंगित और आकार को जानता है वह विनीत कहलाता है। देव, गन्धर्व और मनुष्यों से पूजित वह विनीत शिष्य शरीर को त्याग कर या तो शाश्वत सिद्ध होता है या अल्पकर्म वाला महर्द्धिक देव होता है।

श्रद्धा गुण के लिए उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है–

'तहियाणं, तु भावाणं सब्भावे उवएसणं।
भावेणं सद्दहंतस्स सम्मत्तं तं वियाहियं।।'

अर्थात इन तथ्य (नौ तत्त्व) भावों के सद्भाव (वास्तविक अस्तित्व) के निरूपण में जो अन्तःकरण से श्रद्धा करता है, उसे सम्यक्त्व कहा गया है। सम्यक्त्व निर्वाण/मोक्ष का प्रथम द्वार, जिसमें प्रवेश करने के बाद ही व्यक्ति के जीवन की दिशा सही हो जाती है। वह सत्पथ पर चल पड़ता है। जिस व्यक्ति को सम्यक्त्व की उपलब्धि हो जाती है उसका लक्ष्य के प्रति दृष्टिकोण सही हो जाता है, ज्ञान सम्यक् होता है और आचरण में पवित्रता सधने लगती है।

सम्यक्त्व के तीन प्रकारों में क्षायक सम्यक्त्व उत्कृष्ट है। यह आत्मा का प्रथम गुण है जो सब गुणों को आकर्षित करने वाला है। इसके साथ-साथ सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और यथाख्यात चारित्र के प्राप्ति होने पर व्यक्ति सर्वगुणसम्पन्नता प्राप्त कर लेता है और सिद्धि का वरण करता है। वर्तमान में सर्वगुणसम्पन्नता का आलोक हमारे जीवन में न भी जगमगाये किन्तु सद्गुणों की ज्योति भी जलाते रहें तो एक समय ऐसा भी आयेगा जब हम सर्वगुणसम्पन्नता की ओर कदम बढ़ा सकेंगे।

हिन्दू नव वर्ष की शुभकामना! यह वर्ष आपके जीवन को सद्गुणों की सौरभ से महकाता रहे!

– पुष्पा बैंगानी

अनुक्रम

मुख्य आलेख

07

श्रद्धा, ज्ञान और सदाचार का समवाय ही मोक्ष-पथ है

-आचार्य तुलसी

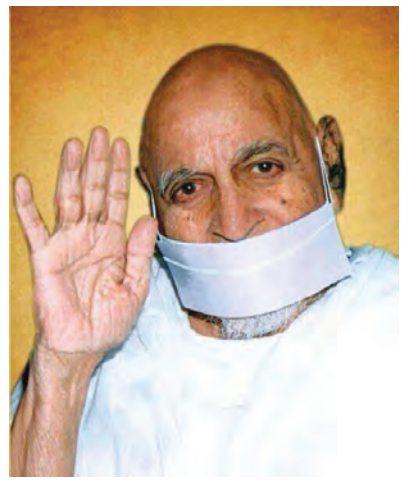

08-10

तीर पर पहुंच कर क्यों रुके हो?

-आचार्य महाप्रज्ञ

11-13

सर्वगुणसम्पन्नता से क्या मिलेगा?

-आचार्य महाश्रमण

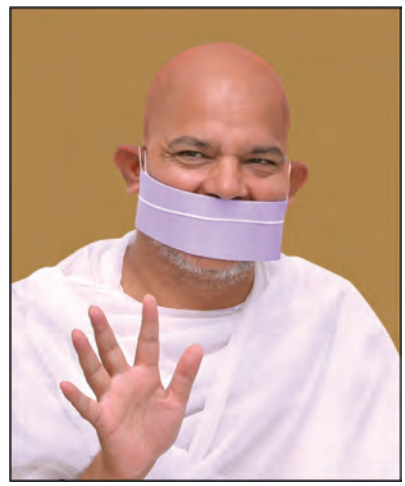

प्रकाशकीय कार्यालय
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट
कोलकाता - 700001

संपर्क सूत्र
(033) 2235 7956, 2234 3598
email : info@jstmahasabha.org
मूल्य 50/-
विशेष सहयोग
डॉ. वन्दना बरड़िया

प्रधान संपादक
मनसुख सेठिया
संपादक
पुष्पा बैंगानी
आवरण
बिनीत नौलखा

सदस्यता शुल्क
वार्षिक 500/-
त्रैवार्षिक 1250/-
दसवर्षीय 3000/-

अनुक्रम

स्थाई स्तम्भ

14-15
सर्वगुणसम्पन्नता
-मंत्री मुनि सुमेरमल

16
निर्वाण के उपाय
-शासन गौरव मुनि राजेन्द्र कुमार

17-18
आत्म-सिद्धि
-मुनि कन्हैयालाल

19-22
जैन साधना-मार्ग
- शासन गौरव साध्वी राजीमती

23-24
सुधार अपने हाथ
-डॉ. साध्वी शुभप्रभा

25-26
भीतर का परिष्कार : सिद्धि का द्वार
-साध्वी अणिमा श्री

27-30
आत्म प्रबंधन प्रविधि
-डॉ. साध्वी सरलयशा

31-33
ता देव! दिज्ज बोहिं
-साध्वी पुण्ययशा

22
सर्वगुणसम्पन्नता को जीवन-लक्ष्य बनाएं
-अर्जुन मेड़तवाल

06
महावीर वाणी

रश्मियां इतिहास की

34-37
साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी 'लाडनूं'
-शासन गौरव साध्वी कल्पलता

युगप्रधान आचार्य श्रृंखला

38-40
विलक्षण वाग्मी आचार्य वज्रस्वामी
-शासनश्री साध्वी संघमित्रा

महावीर वाणी

1. **एयं पंचविहं नाणं दव्वाण य गुणाण य।**
   पज्जवाणं च सव्वेसिं नाणं नाणीहि देसियं।। (उ. 28:5)
   सर्व द्रव्य, उनके सर्व गुण और उनकी सर्व पर्याय के यथार्थ ज्ञान को ही ज्ञानी भगवान ने 'ज्ञान' कहा है। यह ज्ञान पाँच प्रकार से होता है।

2. **तहियाणं तु भावाणं सब्भावे उवएसणं।**
   भावेणं सद्दहंतस्स सम्मत्तं तं वियाहियं।। (उ. 28:15)
   तथ्य भावों के सद्भाव के उपदेश में जो आन्तरिक श्रद्धा-विश्वास करता है, उसे सम्यक्त्व होता है। अन्तःकरण की इस श्रद्धा को सम्यक्त्व कहा गया है। 1

3. **नादंसणिस्स नाणं नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।**
   अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं।। (उ. 28:30)
   जिसके श्रद्धा नहीं है, उसके सम्यक्—सच्चा ज्ञान नहीं होता और सच्चा ज्ञान बिना चारित्र गुण नहीं होता और चारित्र गुणों के बिना कर्म-मुक्ति नहीं होती और कर्म-मुक्ति बिना निर्वाण नहीं होता।

4. **इय उवएसं सारं जरमरणहरं खु मण्णए जं तु।**
   तं सम्मत्तं भणियं समणाणं सावयाणं पि।। (मो. पा. 40)
   सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का यह उपदेश ही सारभूत है, यही जरा और मरणादि को हरने वाला है, जो ऐसा मानता है उसे ही सम्यग्दर्शन की उपलब्धि कही है। यह सम्यग्दर्शन मुनि और श्रावक दोनों के लिए है।

5. **अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।**
   जाणइ तं सण्णाणं चरदिह चारित्तमग्गुत्ति।। (भा. पा. 31)
   आत्मा में लीन आत्मा निश्चय रूप से सम्यक् दृष्टि है। आत्मा को यथार्थ रूप में जानता है, वह सम्यक्ज्ञान है और आत्मा में तन्मय होकर आचरण करता है, वह चारित्र है। इस प्रकार यह मोक्ष का मार्ग है।

श्रद्धा, ज्ञान और सदाचार का समवाय ही मोक्ष-पथ है

भगवान पार्श्वनाथ और महावीर जैन परंपरा के महान प्रभावी तीर्थंकर हुए हैं। जो उन्हें तीर्थंकर नहीं मानते, वे भी उनका ऐतिहासिक अस्तित्व/महत्त्व स्वीकार करते हैं। वे दोनों महापुरुष हमारे आराध्य और सर्वस्व हैं। उनसे बढ़कर हमारे पास दूसरी कोई पूंजी या संपन्नता नहीं है। उनके द्वारा बताए गए पथ पर चलना ही हमारा अभिप्रेत है। भगवान पार्श्वनाथ ने जहां चातुर्याम धर्म का प्रचार किया, वहीं भगवान महावीर ने अणगार धर्म और अगार धर्म के रूप विभाजित कर धर्म को व्याख्यायित किया। वैसे दोनों के द्वारा प्ररूपित धर्म में मौलिक कोई भेद नहीं है। वह एक ही है। उनके उस धर्म को रेखांकित करते हुए आगमों में कहा गया है—

इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलं पडिपुण्णं नेआउयं संसुद्धं सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमविसंधि सव्वदुक्ख-प्पहीणमग्गं। एत्थं ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति। इसका अर्थ है—यही निग्रंथ प्रवचन सत्य है, अनुत्तर है, एक है, प्रतिपूर्ण है, न्याययुक्त है, शुद्ध है, शल्य को काटने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति का मार्ग है, निर्याण और निर्वाण का मार्ग है, यथार्थ है, अविच्छिन्न है, सब दुःखों का नाश करने वाला है।

मैं समझता हूं, स्वीकृत पथ के प्रति घनीभूत श्रद्धा का यह एक निदर्शन है। इस पथ के प्रति हमारी ऐसी ही घनीभूत श्रद्धा होनी चाहिए, क्योंकि संशयशील व्यक्ति लक्ष्य तक पहुंचने में कभी सफल नहीं हो सकता। पर श्रद्धा ज्ञानयुक्त होनी चाहिए। सम्यक ज्ञान के साथ ही वह वास्तव में अपना प्रभाव दिखाती है।

तीसरा तत्त्व है—आचरण। एक अपेक्षा से सम्यक श्रद्धा और सम्यक ज्ञान की सही सार्थकता तभी प्रकट होती है, जब आचरण सही हो। वस्तुतः श्रद्धा, ज्ञान और आचरण (चारित्र)—यह एक त्रिपदी है। गीता में इसे भक्ति, ज्ञान और कर्म के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस त्रिपदी में अखिल विश्व के समस्त उपादेय तत्त्वों का समावेश हो गया है। कुछ लोग इनमें से एक-एक पर बल देते हैं, पर मेरी दृष्टि में यह उचित नहीं है। इससे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। सम्यक श्रद्धा, सम्यक ज्ञान और सम्यक आचरण (चरित्र)—इन तीनों का समवाय ही मोक्ष मार्ग है। इसलिए इन तीनों तत्त्वों की समुचित आराधना करनी चाहिए। इस आराधना-साधना में व्यक्ति जितना आगे बढ़ता है, उसका मोक्ष उतना ही निकट होता है।

क्षायिक भाव

ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के सर्वथा नष्ट हो जाने को क्षय कहा जाता है। कर्मों के क्षय से होने वाली आत्मा की अवस्था क्षायिक भाव कहलाती है। इसे आप और अधिक स्पष्टता से समझें। फिटकरी डालने से मिट्टी नीचे जम जाने के पश्चात आपने धीरे-धीरे पानी छान लिया। छानने के बाद आपने पुनः उस पानी में फिटकरी डाली, शोधक मसाले डाले और उसे अग्नि पर उबाला। अब वह पानी बिलकुल मल-रहित बन गया। यह क्षायिक अवस्था है। हमारी आत्मा भी कर्मों को नष्ट करते-करते जब उन्हें पूर्ण रूप से नष्ट कर देती है अर्थात उनके वापस उभरने की सारी संभावनाओं से मुक्त हो जाती है, तब आत्मा क्षायिक भाव को प्राप्त होती है।

तीर पर पहुंचकर क्यों रुके हो?

एक साधु उदास मुद्रा में बैठा था। मैंने पूछा—'ऐसे क्यों बैठे हो?'

उसने कहा—'मन में समाधि नहीं है।'

'समाधि क्यों नहीं है?'

'मुझ पर आचार्यश्री की कृपा नहीं है इसलिए मन में समाधि नहीं है।'

'कृपा नहीं है, इसका कैसे पता चला? क्या ऐसा कोई कारण बता सकते हो, जिससे पता चले—तुम्हारे पर कृपा नहीं है।'

'हां! बता सकता हूं। मैं कई बार आचार्यवर के पास गया, दर्शन किए और एक बार भी आचार्यश्री ने यह नहीं पूछा—तुम कैसे हो? कब आए? कितने वर्ष से आए? इससे अपने आप पता चल जाता है कि आचार्यश्री की मुझ पर कृपा नहीं है। इसी कारण मेरे मन में समाधि नहीं है।'

इस प्रकार की अनेक घटनाएं घटित होती हैं।

मैंने मन ही मन सोचा—यह छोटा साधु कम पढ़ा-लिखा है, इसलिए असमाधि में चला गया। कभी-कभी गौतम जैसे मनीषी व्यक्ति भी असमाधि में चले जाते हैं तब इसकी तो बात ही क्या है? गौतम स्वामी महावीर के ज्येष्ठ गणधर थे। महावीर के चौदह हजार साधु थे और छत्तीस हजार साध्वियां थी। उनमें गौतम सबसे पहले महावीर के शिष्य बने। जब वे भी असमाधि में चले जाते हैं तब मैं एक छोटे साधु की बात को लेकर क्यों उलझूं?

एक बार ऐसा ही हुआ। गौतम स्वामी उदास होकर बैठ गए। वे बड़े खिन्न थे। कभी-कभी शिष्य उदास होता है तो गुरु को मनाना पड़ता है। महावीर को जब यह पता चला—गौतम आज उदास बैठे हैं तो महावीर ने पूछा होगा—'आज ऐसे क्यों बैठे हो।'

उत्तर मिला होगा—'मन में समाधि नहीं है।'

'समाधि क्यों नहीं है? तुम मेरे शिष्य बने, मैंने तुम्हें सब साधुओं में अग्रणी बनाया, प्रथम गणधर बनाया फिर भी तुम्हारे चित्त में समाधि नहीं है। यह क्यों?'

'आपकी मुझ पर कृपा नहीं है।'

ऐसा सुनकर महावीर भी शायद अचम्भे में पड़े होंगे। ये सारी विचित्रताएं होती हैं। इसका कारण है हमारा परोक्ष ज्ञान।

परोक्ष की प्रकृति

असमाधि का मूल बीज है परोक्ष ज्ञान। प्रत्यक्ष ज्ञान का न होना असमाधि का बहुत बड़ा कारण है। परोक्ष ज्ञान समाधि में बाधा पैदा करता है। विपर्यय, निराशा, विचिकित्सा, शंका और संशय—ये सब परोक्ष ज्ञान के घटक तत्त्व हैं—

परोक्षे संप्रजायन्ते, बाधास्तत्र विपर्ययः।
निराशा विचिकित्सा च, शंका क्वचिच्च संशयः।।

परोक्ष की प्रकृति स्पष्ट नहीं होती। उसमें बाहर और भीतर का भेद होता है। एक व्यक्ति एक बात कह रहा है किन्तु सामने वाला उसे मानता ही नहीं है। वह सोचता है—बाहर में ऐसा कह रहा है, पता नहीं, इसके भीतर क्या है? व्यवहार में यह कल्पना कौन नहीं करता? व्यक्ति सोचता है—इस व्यक्ति ने मुझे आश्वासन दिया है, यह बाहर से बड़ी मीठी-मीठी बातें कर रहा है पर इसके भीतर क्या है? उसके मन में यह संशय बना रहता है।

संशय का कारण परोक्ष की प्रकृति है। उसका परिणाम है बाहर और अंदर का भेद। उसके साथ अनुमान और जुड़ जाता है। व्यक्ति मन ही मन अनुमान और अटकलें लगाता है। उसका सिर भारी बन जाता है। यदि यह परोक्ष ज्ञान नहीं होता, अनुमान नहीं होता तो संगठन की समस्या भी नहीं होती। संगठन की सबसे बड़ी समस्या है—परोक्ष ज्ञान का होना और अनुमान की शक्ति का होना। हर आदमी अपना-अपना अनुमान लगाता है। चाहे अनुमान का हेतु गलत भी हो किंतु वह प्रत्येक बात में

अटकलें लगाता है। कहा गया—अनुमान हनुमान की पूंछ की तरह लंबा होता है। उसका कहीं अंत नहीं होता।

अस्पष्टता की स्थिति में अनुमान जन्म लेते हैं। जहां अस्पष्टता होती है, बाहर और अंदर का भेद होता है वहां असमाधि का होना असम्भव नहीं है। अस्पष्टता का परिणाम है—असमाधि। समाधि वहीं होती है, जहां प्रत्यक्षीकरण होता है, स्पष्टता होती है—

परोक्षं विद्यते ऽस्पष्ट, बाह्यान्तरविभेदकृद्।
सानुमानं च प्रत्यक्षं, स्पष्टं तेन समाधिकृद्।।

असमाधि का कारण : विपर्यय

असमाधि का एक कारण है—विपर्यय। किसी व्यक्ति को कहा कुछ जाता है और वह उसे समझ कुछ और लेता है। ऐसी अनेक घटनाएं घटित होती रहती हैं। अगर उनका पूरा विश्लेषण करें तो एक बृहद् ग्रन्थ बन जाए। आचार्यश्री ने कुछ कहा, सामने वाले ने कुछ और ही समझ लिया, उसका ज्ञान विपरीत हो गया। उसके मन में असमाधि का एक भूत खड़ा हो जाता है। जब विपर्यय होता है, मन में निराशा आ जाती है।

गौतम के मन में भी निराशा छा गई। गौतम बोले—भगवान! आपको अपनी बात क्या बताऊं?'

महावीर बोले—'बताने की कोई जरूरत नहीं है, मैं जानता हूं फिर भी तुम बता दो। तुम्हारा बोझ तो हलका हो जाए।'

जब मन में बहुत सारी बातें होती हैं और कोई सुनता नहीं है तो व्यक्ति बेचैन और उदास हो जाता है। पेट का ही अफारा नहीं होता, मस्तिष्क का भी अफारा होता है। पेट का अफारा दवा से जल्दी समाप्त हो जाता है पर दिमाग का अफारा किसी दवा से नहीं मिटता। इसे मिटाने का उपाय है रेचन। कोई रेचन कराने वाला मिल जाए, बात को सुनने वाला मिल जाए तो दिमाग का बोझ हलका हो जाता है।

गौतम ने कहा—'भगवान! आपने मेरी कैसी स्थिति बना दी है। एक ओर मुझे सब साधु-साध्वियों में ज्येष्ठ बना दिया, दूसरी ओर मेरी दयनीय दशा देखिए—जिनको मैं दीक्षित करके लाया, जिन्हें शिष्य बनाया, जो मेरे पीछे-पीछे चले, आपके पास पहुंचते-पहुंचते वे एक-एक कर केवली होते चले गए और मैं अभी भी छद्मस्थ हूं। इससे बड़ा भी कोई अन्याय हो सकता है? आप पूछते हैं—असमाधि क्यों? इसका स्पष्ट कारण है—मैंने जिनको मूंडा, जो मेरे शिष्य बने, वे आपकी परिषद में पहुंचते-पहुंचते केवली बन गए। मुझे साधना करते हुए इतने वर्ष बीत गए फिर भी प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं जागा। कौन सी शिला आड़े आ रही है? मेरी छद्मस्थता दूर क्यों नहीं हो रही है? आवरण दूर क्यों नहीं हो रहा है?

महावीर का समाधान

भगवान ने कहा—गौतम! तुम निराशा में क्यों चले गए? तुमने सारा समुद्र तैर लिया। तुम बहुत सारे छद्मों को पार कर गए। तुम छद्म और आवरण के समुद्र को पार कर तट पर पहुंच गए हो—

तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम! मा पमायए।।

हमारी ज्ञान-नदी के दो तट हैं—एक परोक्ष का तट और एक प्रत्यक्ष का तट। तुम परोक्ष के तट से चले और प्रत्यक्ष के तट पर पहुंच गए। ऐसा लगता है—तट पर पहुंच कर तुम्हारे पैर ठिठक गए हैं, अटक गए हैं, तुम्हारी गति मंद हो गई है। आश्चर्य है—तुम तीर पर पहुंचकर ठहर क्यों गए? यह ठहराव अच्छा नहीं है।

बहुत बार ऐसा होता है—आदमी बहुत आगे बढ़ जाता है किन्तु जहां किनारा आता है, वह रुक जाता है। प्रसिद्ध कथा है—अन्धा आदमी चौरासी के चक्कर में फंस गया। वह दीवार का सहारा लिए घूमता रहा। बाहर निकलने का एक ही दरवाजा था। जब बाहर निकलने का दरवाजा आया तब वह सिर को खुजलाने लगा। सिर खुजलाते-खुजलाते वह आगे चला गया, दरवाजा पीछे छूट गया। वह एक अन्तहीन चक्कर में फंस गया। कभी-कभी ऐसा हो जाता है।

महावीर का संदेश जारी था—'गौतम! तुम तीर पर रुक गये हो, तुमने यह अच्छा नहीं किया। तुम निराशा को छोड़ो। अब भी जल्दी करो, तैयार हो जाओ। तीर तुम्हारे सामने है। यह तट सामने दिख रहा है।'

महावीर ने गौतम को बहुत आश्वासन दिया। आचार्य को कभी-कभी बहुत आश्वासन देना होता है। महावीर बोलते चले जा रहे थे—'गौतम! तुम भूल गये हो। तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध नया नहीं है। न जाने हमारे संबंध कितने काल से है? न जाने कितने जन्मों से हम दोनों साथ-साथ रह रहे हैं? हमारा चिर-परिचय है, चिर-संसर्ग है। मैं तुम्हारा बहुत पुराना साथी हूं, तुम्हारी उपेक्षा कैसे कर सकता हूं? इस जन्म को पूरा कर हम जहां जायेंगे, वहां तुम और मैं का भेद ही समाप्त हो जाएगा, हम एक हो जाएंगे। जो तुम हो वह मैं हूं और जो मैं हूं वह तुम हो। हमारा अद्वैत और अभेद बना रहेगा।'

समाधि : असमाधि

महावीर की विशेषता थी—वे सामने वाले व्यक्ति को साक्षात बोध करा देते। शिष्य के मन में समाधि पैदा करना गुरु का काम होता है। समाधि के लिए साक्षात्कार, स्पष्ट ज्ञान कराना जरूरी होता है। जहां अस्पष्टता है, वहां असमाधि है।

ज्ञान और व्यवहार में समाधि स्पष्टता की स्थिति में ही संभव बनती है।

अस्पष्टता भवेद् यत्राऽसमाधिस्तत्र जायतेः।
स्पष्टतायां समाधिः स्याद्, ज्ञानजो व्यवहारजः।।

जब तक अस्पष्टता बनी रहेगी, समाधि की बात नहीं सोची जा सकेगी। समाधि के लिए स्पष्टता बहुत आवश्यक है। जब तक अस्पष्टता होती है, मन में समाधि नहीं रहती। स्पष्टता से जुड़ी हुई है समाधि। अनेक व्यक्ति कहते हैं—मुझे अभी तक समाधान नहीं मिला। प्रश्न हुआ—क्यों नहीं मिला? वे कहते हैं—अभी पूरी बात साफ नहीं हुई, स्पष्ट नहीं हुई। जब तक पूरी बात सामने नहीं आती, समाधि नहीं होती।

सिद्धांत सर्वज्ञता का

भगवान महावीर ने अतीन्द्रिय ज्ञान पर बहुत बल दिया। अगर चित्त समाधि को पाना है तो प्रत्यक्ष में जीना होगा। परोक्ष में जीने वाला व्यक्ति कभी समाधि के बिन्दु तक पहुंच नहीं सकता। समाधि के चरम बिन्दु को छूना है तो ज्ञान को भी प्रत्यक्ष बनाना होगा। न केवल भारतीय दर्शन अपितु विश्व दर्शन की परम्परा में सर्वज्ञता पर सबसे अधिक बल देने वाला दर्शन जैन दर्शन है। सर्वज्ञवाद की प्रस्थापना सबसे पहले जैन दर्शन ने की। बहुत सारे दर्शनों ने सर्वज्ञवाद का खण्डन किया और उसका उपहास करते हुए उन्होंने कहा—

सवं पश्यतु मावा, तत्त्वमिष्टं तु पश्यतु।
कीटसंख्यापरिज्ञानमस्माकं क्वोपयुज्यते।।

सबको जानो या मत जानो। तुम इष्ट तत्त्व को अवश्य जानो। कितने कीड़े-मकोड़े हैं। यह जानने की क्या उपयोगिता है?

राजा ने एक विद्वान से पूछा—अगर तुम ज्ञानी हो तो बताओ, मेरे राज्य में कौए कितने हैं? उसने कहा—पांच हजार। राजा ने कहा—मैं गिनती कराऊंगा। विद्वान बोला—ज्यादा निकल जाए तो मान लीजिए—इतने विदेश से आ गए। यदि कम हो तो मान लीजिए—इतने कौए विदेश चले गए।

अस्पष्टता में कोई समाधान नहीं होता, केवल अटकलें और ऊटपटांग बातें चलती हैं। महावीर ने इस सूत्र को पकड़ा। उन्होंने कहा—यदि समाधान पाना है, समाधि को उपलब्ध होना है तो ज्ञान को भी स्पष्ट करना होगा, प्रत्यक्षीकरण करना होगा। कोई भी व्यक्ति महावीर के पास आता, उनसे कोई प्रश्न पूछता तो महावीर उसे सबसे पहले जाति-स्मरण (पूर्वजन्म की स्मृति) का प्रयोग कराते। जाति-स्मरण होते ही सारे संशय एक साथ समाप्त हो जाते हैं कोई संशय रहता ही नहीं है। जब व्यक्ति को पहले जन्म की स्मृति हो गई तब आत्मा है या नहीं? यह प्रश्न समाप्त हो जाता है। धर्म है या नहीं? स्वर्ग और नरक है या नहीं? पुनर्जन्म है या नहीं? ये प्रश्न स्वतः समाहित हो जाते हैं। अच्छे कर्म का फल अच्छा होता है और बुरे कर्म का बुरा फल होता है, सच्चाई में उसका विश्वास हो जाता है। सारे संशय इस एक प्रयोग से समाप्त हो जाते हैं।

परामनोविज्ञान

आज जातिस्मरण की प्रक्रिया को विकसित करने की जरूरत है। विज्ञान की एक नई शाखा विकसित हो रही है—परामनोविज्ञान। विज्ञान की एक शाखा बनी—मनोविज्ञान। मनोविज्ञान को भी विज्ञान के रूप में मान्यता सहजता से नहीं मिली। साम्यवादी परम्परा में ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, नरक, कर्म, पुण्य और पाप—सबको अस्वीकार किया गया। जब सोवियत रूस में पेरासाइकोलोजी के प्रयोग हुए और उसके निष्कर्ष सामने आए तो सारा रूस हिल उठा। इन प्रयोगों को बंद करने का स्वर उभरा। कहा गया—इन प्रयोगों को बन्द नहीं किया गया तो मार्क्सवाद लड़खड़ा जायेगा। अगर पुनर्जन्म सिद्ध हो गया तो अनर्थ हो जाएगा। आज पेरासाइकोलोजी का सिद्धांत प्रतिष्ठित हो गया, मान्य हो गया। उसके लड़खड़ाने की बात समाप्त हो गई। आज पुनर्जन्म पर, जाति- स्मरण पर बहुत अनुसन्धान चल रहे हैं। टैलीपेथी के द्वारा, अतीन्द्रिय चेतना के द्वारा बहुत बड़े-बड़े कार्य होने लग गये हैं। यदि अध्यात्म के लोग इस दिशा में नहीं साचेंगे तो पिछड़ जाएंगे।

अगला विश्वयुद्ध हुआ तो?

पेंटागन, जो अमरीका का रक्षा-संस्थान है, उसमें परामनोविज्ञान का उपयोग किया जा रहा है। ऐसे-ऐसे पेरासाइकोलाजिस्ट हैं, जो समाधि में चले जाते हैं। वे समाधि की अवस्था में रूस के आधुनिक शस्त्रास्त्रों की गुप्ततम फाइलों का पता-ठिकाना बना देते हैं। उन फाइलों में क्या-क्या जानकारी संदृब्ध है, इसका अक्षरशः ब्यौरा लिखवा देते हैं। परामनोविज्ञान के विकास पर अरबों डालर खर्च किए जा रहे हैं। यह माना जा रहा है—यदि अगला विश्व युद्ध हुआ तो वह शस्त्रों से नहीं, परामानसिक शक्तियों से लड़ा जाएगा। यह विशुद्ध आध्यात्मिक प्रक्रिया संहारक बनती चली जा रही है। यदि धर्म के लोगों ने जाति-स्मरण की प्रक्रिया के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया तो वह दिन दूर नहीं है जिस दिन इस क्षेत्र में विज्ञान आगे बढ़ जाएगा और धर्म पीछे रह जाएगा। जाति-स्मरण को प्रायोगिक स्तर पर जीने वाला धर्म मुंह ताकता रह जाएगा। विज्ञान के जरिए यह महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया विस्तार पाएगी, धर्म की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिह्न लग जाएगा।

सर्वगुणसम्पन्नता से क्या मिलेगा?

प्रश्न किया गया—**सव्वगुणसम्पन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?** भंते! सर्व गुण-सम्पन्नता से जीव क्या प्राप्त करता है? उत्तर दिया गया—**सव्वगुणसम्पन्नयाए णं अपुणरावत्तिं जणयइ। अपुणरावत्तिं पत्तए य णं जीवे सारीरमाणसाणं दुक्खाणं नो भागी भवइ।** सर्व-गुण-सम्पन्नता से वह अपुनरावृत्ति (मुक्ति) को प्राप्त होता है। अपुनरावृत्ति को प्राप्त करने वाला जीव शारीरिक और मानसिक दुःखों का भागी नहीं होता।

सर्वगुणसम्पन्नता का सीधा सा अर्थ है—समस्त गुणों से संपन्न होना और अपुनरावृत्ति से तात्पर्य है उस स्थान को प्राप्त कर लेना, जहां पहुंचने के बाद वापिस आना नहीं पड़ता। वह स्थान है—मोक्ष। जैनदर्शन के अनुसार संसारी आत्मा संसार में भ्रमण करती रहती है, जन्म और मृत्यु के चक्र में संचरण करती रहती है। जब उसका आवागमन अवरुद्ध हो जाता है, तब वह हमेशा-हमेशा के लिए मुक्त हो जाती है। आत्मा की इस स्थिति का निर्माण सर्वगुणसम्पन्नता की अवस्था में ही होता है।

सर्वगुणसम्पन्नता के चार आयाम हैं—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व और यथाख्यात चारित्र। इन चारों की प्राप्ति ही सर्वगुणसम्पन्नता है।

पहला आयाम है—अनन्त ज्ञान। जब पूर्णतया अज्ञान का क्षय होता है, तब संपूर्ण ज्ञान का प्रकाशन होता है। इसे जैन पारिभाषिक शब्दावली में केवलज्ञान कहा जाता है। केवलज्ञान होने के बाद कोई भी ज्ञान अवशेष नहीं रहता। अनन्त ज्ञान प्रकट हो जाता है और सारे आवरण दूर हो जाते हैं। यह अनन्त ज्ञान की प्राप्ति सर्वगुणसम्पन्नता का पहला आयाम है।

दूसरा आयाम है—अनन्त दर्शन। दर्शन शब्द ज्ञान के साथ ही जुड़ा हुआ है। दर्शन शब्द के अनेक अर्थ हैं। दर्शन का पहला अर्थ है देखना। दर्शन शब्द का दूसरा अर्थ है—सिद्धांत, जैसे जैनदर्शन, बौद्धदर्शन आदि। दर्शन का तीसरा अर्थ है—सामान्य अवबोध। यह जैनदर्शन का एक महत्त्वपूर्ण और पारिभाषिक शब्द है। विशेष ज्ञान पर्यायों का बोध होना ज्ञान कहलाता है और सामान्य अथवा अनाकार रूप में जो अवबोधित होता है, वह दर्शन कहलाता है। उदाहरणार्थ—एक व्यक्ति प्रवचन-पाण्डाल में आया और उसने देखा कि वहां बहुत सारे लोग बैठे हैं। इस बात को जानना दर्शन हो गया और फिर विश्लेषण करना कि वहां पूज्य आचार्यप्रवर फरमा रहे हैं। इतने साधु-साध्वियां हैं। इतने श्रावक-श्राविकाएं हैं आदि विवेचन करना ज्ञान हो गया। अभेद रूप में जो अवबोध है, वह दर्शन है और भेद रूप में विश्लेषण युक्त जो अवबोध है, वह ज्ञान है।

तीसरा आयाम है—क्षायिक सम्यक्त्व। अनंतानुबंधी कषाय चतुष्क, मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय के क्षीण होने से क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। यह सम्यक्त्व आने के बाद वापिस कभी जाता नहीं है। क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति के बाद वह उसी जन्म में या तीसरे जन्म में निश्चित ही मोक्ष जाता है।

चौथा आयाम है—यथाख्यात चारित्र। यह चारित्र प्राप्त होने के बाद वापिस कभी जाता नहीं है। इसे क्षायिक चारित्र भी कहा जाता है। यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति के बाद चारित्र की दृष्टि से कुछ भी अवशेष नहीं रहता, पूर्णरूप से चारित्र उपलब्ध हो जाता है।

अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व और यथाख्यात चारित्र की उपलब्धि का मतलब है—सर्वगुणसम्पन्नता की प्राप्ति होना। सर्वगुणसम्पन्नता का पहला परिणाम है—अपुनरावृत्ति (मोक्ष) की प्राप्ति। जिस मनुष्य को केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है, वह निश्चित रूप से अपुनरावृत्ति को प्राप्त करता है। उसी जीवन के बाद अथवा उसी जीवन की मृत्यु के बाद उसे अनिवार्य रूप से मोक्ष प्राप्त होता है। यह केवलज्ञान एकमात्र मनुष्य को ही प्राप्त होता है। मनुष्य के सिवाय अन्य किसी भी प्राणी को केवलज्ञान प्राप्त नहीं होता। इसलिए दुनिया में कोई सर्वश्रेष्ठ प्राणी है तो वह मनुष्य है। यह भी एक तथ्य है कि जहां मनुष्य केवलज्ञान प्राप्त करने की अर्हता रखता है, वहीं मनुष्य भयंकर पाप भी कर सकता है।

एक आदमी बम विस्फोट करता है अथवा हिंसा का कोई ऐसा प्रयोग करता है, जिससे एक साथ अनेक मनुष्यों का संहार हो जाता है, महान नरसंहार हो सकता है। ऐसी विनाश की लीला कोई आदमी ही दिखा सकता है, पशु के वश की बात नहीं होती। इस दृश्य दुनिया में यदि सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य है तो अधम प्राणियों में भी मनुष्य का नाम बहुत ऊंचा आ सकेगा। सर्वगुणसम्पन्नता भी आदमी प्राप्त कर सकता है और अधमसम्पन्नता भी मनुष्य ही प्राप्त कर सकता है। अपेक्षा है, मनुष्य अपने जीवन में गुणों का विकास करे। अनेक जन्मों की साधना से सर्वगुणसम्पन्नता सिद्ध हो सकती है। इसलिए एक ही जन्म में साधना करने से सर्वगुणसम्पन्नता आ जाए, यह कहना तो कठिन है। किन्तु आदमी यह लक्ष्य बनाए कि मुझे सर्वगुणसम्पन्न बनना है। आदमी अपने जीवन के कमजोर पक्ष को छोड़ता जाए और गुणात्मक पक्ष की दिशा में मजबूती के साथ कदम आगे बढ़ाता जाए। किसी व्यक्ति को मूर्ति का निर्माण करना है। पत्थर उसके पास है। जो कलाकार होता है, वह उस पत्थर में से अनावश्यक पत्थर को निकालता जाता है और निकालते-निकालते मूर्ति का निर्माण हो जाता है। आदमी के जीवन में भी जो विजातीय दुर्गुण हैं, उनको निकालने का प्रयास करे और गुणों को बढ़ाने का लक्ष्य रखे तो गुणात्मक विकास हो सकता है।

आदमी में अवगुण भी हो सकते हैं और सद्गुण भी हो सकते हैं। दुर्गुणों को अस्वीकार करते हुए सद्गुणों को स्वीकार करें तो गुणों का विकास हो सकता है। एक पिता के दो पुत्र थे। बड़े लड़के के जीवन में दुर्गुणों का विकास हो रहा था और छोटे लड़के के जीवन में सद्गुणों का विकास हो रहा था। किसी व्यक्ति ने बड़े लड़के से पूछा—भैया! तुम्हारे में इतने अवगुण हैं, इतनी बुराइयां हैं, यह तुमने कहां से सीखी? बड़े लड़के ने कहा—यह सब मैंने अपने पिताजी से सीखा है। फिर छोटे लड़के से पूछा—भैया! तुम इतने शालीन, सज्जन और सद्गुण-संपन्न हो। तुमने यह अच्छाइयां कहां से ग्रहण की? छोटे बेटे ने कहा—महाशय ! यह सब मैंने अपने पिताजी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर ग्रहण की है। पृच्छक के मन में जिज्ञासा हुई कि बड़े पुत्र ने बुराइयां भी पिताजी से सीखी और छोटे पुत्र ने अच्छाइयां भी पिताजी से सीखी, यह कैसे हो सकता है? आखिर दोनों को अपनी बात का रहस्य प्रकट करने के लिए कहा। बड़े बेटे ने कहा—मैंने देखा कि पिताजी बीड़ी पीते हैं, शराब पीते हैं, गालियां बोलते हैं और कई गलत काम करते हैं। उनको देखते-देखते मेरे में भी वैसे संस्कार आ गए। मैं भी बीड़ी पीने लग गया, शराब पीने लग गया, गालियां देने लग गया और कई गलत बातें मैंने ग्रहण कर ली। छोटे पुत्र ने कहा—मान्यवर! मैंने देखा कि पिताजी बीड़ी पीते हैं, शराब आदि पीते हैं, जिससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। वे अस्वस्थ रहने लगे। वे गालियां बोलते हैं, अपशब्दों का प्रयोग करते हैं, जिससे उनकी प्रतिष्ठा कम हो गई। वे असम्मान के पात्र बन रहे हैं। वे गलत आचरण करते हैं, जिससे उनका जीवन खराब हो गया। मैंने अपने पिताजी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर यह निर्णय कर लिया कि मैं कभी भी इन बुराइयों को अपने जीवन व्यवहार में नहीं आने दूंगा। इस प्रकार मेरा जीवन अच्छा बन गया।

आदमी बुराइयों को देखे, अच्छाइयों को देखे। दोनों को जानने-समझने के बाद उसी को ग्रहण करे, जो उपादेय है। जैसा कि दसवेआलियं सूत्र में कहा गया है—**जं छेयं तं समायरे** जो श्रेयस्कर है, कल्याणकारी है, उसी का आचरण करे। जो गलत है, उसका आचरण न करे। शास्त्रकार ने सर्वगुणसम्पन्नता से

अपुनरावृत्ति की प्राप्ति बतलाई है और उसके साथ शारीरिक व मानसिक दुःखों से मुक्त होने की बात भी कही है। आदमी के जीवन में गुणसम्पन्नता है तो अनेक समस्याओं से, अनेक कठिनाइयों से छुटकारा मिल जाता है। जैसे कोई व्यक्ति किसी को गाली नहीं देता, मधुरभाषी है, सबके साथ विनम्रता और मृदुतापूर्ण व्यवहार करता है तो लोग भी उसे सम्मान देते हैं, उसके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं। क्योंकि उसका व्यवहार अच्छा है। उसमें विनम्रता और शालीनता का गुण है। इसलिए जो असम्मान या अपमान की स्थिति प्राप्त होती है, उसका कारण स्वयं का अशिष्ट व्यवहार बनता है। उससे व्यक्ति को दुःख होता है। शालीन व्यवहार वाला व्यक्ति उस दुःख से मुक्त हो सकता है।

किसी व्यक्ति में खाने का असंयम है, जिसके कारण खाने के बाद उसका पेट गड़बड़ा जाता है, स्वास्थ्य में कठिनाई हो सकती है। उससे उसे कष्ट होता है, दुःख होता है। इसलिए भोजन में यदि संयम हो तो व्यक्ति को तत्संबंधी दुःख से छुटकारा मिल सकता है। शरीर में बीमारी आदि के होने से शारीरिक समस्या पैदा हो जाती है तो कभी-कभी आदमी के मन की कुण्ठा भी बड़ी दुःखदायी बन जाती है। शरीर में कांटे की चुभन कष्टदायी होती है तो मन में चुभने वाला कांटा भी कष्टदायी होता है। कई बार उस मन में चुभने वाले कांटे का दूसरों को पता नहीं चलता, किन्तु आदमी उसकी वेदना को भोगता रहता है।

राजा और मंत्री में परस्पर मित्रता का संबंध था। एक दिन राजा ने देखा कि आजकल मंत्री बहुत उदास रहता है। इसका कारण क्या है? खोजबीन करने के बाद भी जब कारण का पता नहीं चला तो आखिर मंत्री से ही पूछा—मंत्रीवर! इतना उदास चेहरा कैसे है? तुम तो इतने हंसते-खिलते और खुशमिजाजी थे, अब खिन्नमना कैसे बन गए हो? मंत्री ने अपनी बात बताने में संकोच किया, किन्तु राजा ने दवाब दिया, तब मंत्री ने कहा—महाराज! हम दोनों युवा अवस्था के हैं। अभी कुछ दिनों पहले आपने एक कन्या के साथ शादी की थी। उस कन्या के प्रति मेरे मन में आकर्षण था। मैं उसके साथ शादी करना चाहता था, किन्तु वह मुझे नहीं मिली। इसलिए वह शल्य मेरे भीतर चुभ रहा है। वह मुझे बार-बार याद आती रहती है, किन्तु वह मुझे अप्राप्त है। इसलिए मेरा मन दुःखी हो रहा है। राजा भी गजब का व्यक्ति था। राजा ने कहा—मंत्री! बस इतनी सी बात है। तुम चिन्ता मत करो। इसकी व्यवस्था हो जाएगी। राजा तत्काल नवोढा के पास पहुंचा और उससे पूछा—क्या तुम्हें मेरा आदेश स्वीकार्य है? रानी ने कहा—प्राणनाथ! आप तो मेरे प्राणाधार हैं। आप जैसा कहेंगे, मैं वह करने को तैयार हूं। राजा ने कहा—आज सायंकाल तुम मंत्री के घर चली जाना। आज रात्रि में तुम्हें वहीं रहना है। यह बात सुनते ही रानी अवाक् रह गई। यह कैसा आदेश? परन्तु आदेश तो आदेश होता है। रानी सायंकाल अपने महल से रवाना हुई। मंत्री के निवास स्थल के निकट पहुंच गई। मंत्री ने ज्योंही रानी को आते देखा, मन बदल गया। राजा की पत्नी तो माता के समान होती है। उसके प्रति मेरे मन में ऐसा दुर्भाव कैसे आ गया? मंत्री रानी के सामने गया, प्रणाम किया और कहा—पधारो माताजी! आपने बड़ी कृपा की। रानी को भोजन कराया और वापिस महल की ओर रवाना कर दिया। अब मंत्री ने सोचा—मेरे मन में एक माता तुल्य महारानी के प्रति विकार भाव आ गया। अब मुझे जीने का अधिकार नहीं है। वह तलवार से अपनी गर्दन अलग करने ही वाला था कि तत्काल राजा ने उसका हाथ पकड़ लिया। संयोग से राजा किसी गुप्त मार्ग से मंत्री के घर में पहले से ही आ चुका था। मंत्री ने कहा—महाराज! मुझे मरने दीजिए। मैं आपको मुंह दिखाने लायक नहीं हूं। राजा ने कहा—मंत्री! मुझे विश्वास था कि तुम्हारे द्वारा कोई गलत व्यवहार हो नहीं सकता। तभी तो मैंने अपनी प्रिया को तुम्हारे पास भेजा था। मंत्री के मन का कांटा निकल गया और दुःखी मन प्रसन्न हो गया।

आदमी को कोई ऐसा महावैद्य मिल जाए, मन की बीमारी को दूर कर सके, मन की समस्या का समाधान कर सके। ऐसे महावैद्य के योग से मनोव्यथा दूर हो सकती है, मन का कांटा निकल सकता है और आदमी का मन सुखी बन सकता है। आदमी अपने जीवन में सद्गुणों का विकास करे। विकास करते-करते एक समय ऐसा आ सकता है, जब सर्वगुणसम्पन्नता की स्थिति प्राप्त हो सकती है।

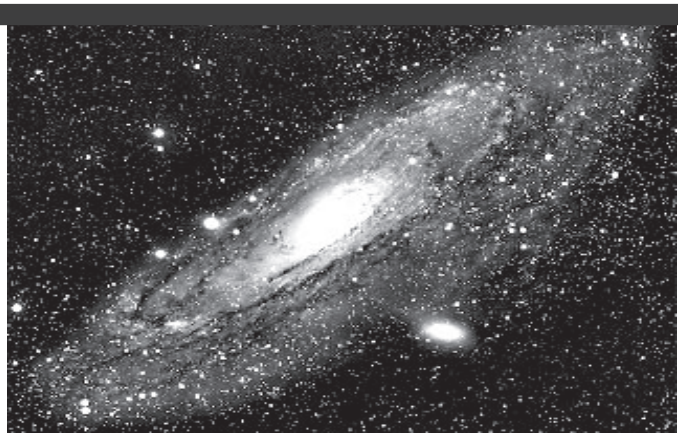

मंत्री मुनि सुमेरमल

सर्वगुणसम्पन्नता

भंते! सर्व गुण सम्पन्नता से जीव क्या प्राप्त करता है?

सर्व-गुण सम्पन्नता से वह अपुनरावृत्ति (मुक्ति) को प्राप्त होता है। अपुनरावृत्ति को प्राप्त करने वाला जीव शारीरिक और मानसिक दुःखों का भागी नहीं होता।

जीव कृष्ण पक्ष में रहता है, तब भी उसे कभी-कभी सत् क्रिया करने का अवसर प्राप्त होता है, किंतु सम्यक् दर्शन के अभाव में गहन अंधकार में उसे अध्यात्म के प्रति लगाव नहीं होता। शुक्ल पक्ष में आने के बाद भव-भ्रमण के समय की सीमा हो जाती है, रत्नत्रय के अभाव में यहां भी वह अनंतानंत जन्म मरण कर लेता है। शुक्ल पक्ष में आने के बाद धीमे-धीमे वैचारिक अंधकार हल्का पड़ने लगता है। प्राणी सुलभ बोधिता की ओर अग्रसर होने लगता है। उस स्थिति में उसे धर्म, अध्यात्म, त्याग, साधु ये सब अच्छे लगने लग जाते हैं। धर्म के प्रति उसकी जिज्ञासा भी जागने लग जाती है। सत् क्रिया के प्रति रूझान बढ़ जाता है। इसी क्रम में बढ़ते-बढ़ते जीव को सम्यक् दर्शन की प्राप्ति हो जाती है। सामान्यतया पहले वापिस जाने वाली औपशमिक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होती है। रत्नत्रय में दो की आंशिक उपलब्धि होने से भी जीव संसार के किनारे लग जाता है। सम्यक् दर्शन के होते ही ज्ञान सम्यक् हो जाता है। दोनों की युति जीवन को चारित्र की ओर अग्रसर करती है। श्रावकत्व, साधुत्व, सम्यक् चारित्र का ही स्वरूप है, श्रावकत्व आंशिक चारित्र है, साधुत्व संपूर्ण चारित्र का प्रतीक है।

तीनों का प्रकट होना शुरू तो हो गया, किंतु तीनों में पूर्णता आने में समय लगता है। जब तक पूर्णता नहीं आती, तब तक सर्वगुणसम्पन्नता की अवस्था नहीं बनती। एक, दो की समग्रता से प्रकट हो भी जाती है, तब भी तीनों की युति अनिवार्य है। तीनों परिपूर्णता से प्रकट हो, तब सर्वात्मना संवर तत्त्व की अवस्था में जीव अवस्थित हो जाता है। यह अवस्थिति कोई दीर्घकालीन नहीं होती, केवल पांच ह्रस्वाक्षर उच्चारण मात्र का समय ही होता है। संसारी जीवों के अबंध अवस्था का गुणस्थान यही है। बाकी तो सर्वत्र कर्म बंध की स्थिति बनी ही रहती है। अंतराल गति भी जीवों के कर्मबंध होता रहता है।

दसवें गुणस्थान तक तो जीव के पाप कर्म का भी बंध होता रहता है। प्रमत्त, अप्रमत्त अवस्था में वीतरागी न बने तब तक पाप का बंध भी चलता रहता है। प्रमाद और कषाय दो ऐसे आश्रव हैं जिनके कारण शुभ योग होते हुए भी पाप-कर्म का बंध मुनि अवस्था में भी होता है। चारित्र होते हुए भी उसमें उत्कृष्टता नहीं आई है। यथाख्यात चारित्र में शुभ योग आश्रव खुला है, पुण्य का बंध अनवरत होता रहता है। केवल चौदहवें गुणस्थान में आश्रव मात्र का निरोध है, वहां सर्वगुणसम्पन्नता आ जाती है, जीव अपुनरावर्त गति-मोक्ष में चला जाता है।

महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय की चंद्रावती नगरी में चक्रवर्ती रत्नाकर राज्य करता था। पद्मावती महारानी ने स्वप्न में राजमहल के प्रांगण में क्षीरसागर को लहराते देखा। राजा को उसने जगाकर बतलाया। सवेरे चतुर्ज्ञानी मुनि नगरी के उद्यान में पधारे। राजा रानी व परिवार जनों ने दर्शन किये, राजा ने स्वप्न के बारे में पूछा। मुनिजी ने कहा—सर्वगुणसम्पन्नता प्राप्त करने वाले बालक का तुम्हारे यहां जन्म होगा। लहरे ऊपर उछल रही थी, इस का अर्थ है—बालक बचपन में ही सर्वगुणसम्पन्नता प्राप्त कर लेगा अर्थात साधु बन जायेगा।

राजा खुश हुआ। गर्भ काल पूरा होने पर बालक का जन्म हुआ। राजा ने भारी उत्सव करके पुत्र का नाम रखा—क्षीर सागर। वह क्रमशः बड़ा होने लगा। राजा चाहता था—पुत्र सर्वगुण संपन्न है तो पहले व्यवहार में संपन्न, फिर अध्यात्म में संपन्न हो। कोरा धार्मिक होने से एकांगी जीवन बन जायेगा। लड़का आठ साल का हुआ, गुरुकुल में भेजने की तैयारी चल रही थी। एक दिन कुंवर सायं महल से संलग्न उद्यान में अकेला घूमने गया।

वहीं पर दो बंदर लड़ रहे थे। कुंवर देखने लग गया, बंदर परस्पर लड़ते-लड़ते दोनों मर गये। बंदरियां इधर उधर वृक्षों पर चढ़ गई। कुंवर सोचने लगा—भोग का परिणाम कटु है। यहां भी दुःख, आगे भी दुःख है। सोच गहराई में उतरा, फलतः अवधिज्ञान हो गया। पिछले भव को देख लिया और विरक्ति की ओर बढ़ गया, वहीं चारित्र आ गया, क्षपक श्रेणी लेकर केवली बन गये। जो कपड़े पास में थे, उसी से साध्वोचित परिधान पहन लिया। देवों ने उत्सव किया।

चक्रवर्ती बाहर से आया, देव दुंदुभि सुनी तो सीधा उद्यान में आया, प्रवचन सुना, अन्त में पूछा—आप जब गर्भ में आये तब आपकी मां पद्मावती को क्षीरसमुद्र का स्वप्न आया। उसका अर्थ चार ज्ञान के धारक स्थविर ने किया था—सर्वगुण संपन्न पुत्र होगा, उनकी वह बात मिली नहीं। क्या बात है। क्षीरसागर सर्वज्ञ ने कहा—सर्वगुणसम्पन्नता का अर्थ है—सर्वज्ञता व क्षायिक चारित्र को पाना। वह मुझे प्राप्त हो ही गया। भौतिक संपन्नता को पाना कोई महत्त्वपूर्ण नहीं है। इससे तो पाप का बंधन होता है। बंधन सर्वगुणसंपन्नता नहीं है। सर्वगुण संपन्नता क्षायिक भाव है, अतः स्थविर मुनि ने ठीक ही कहा था।

नमस्कार होता है गुणों को

मोक्ष मार्ग का पहला तत्त्व है—दर्शन। दर्शन का अर्थ है—दृष्टि या श्रद्धा। श्रद्धा किसके प्रति? लक्ष्य या लक्ष्य-प्राप्ति के साधनों में श्रद्धा का होना अनिवार्य है। जैन दर्शन व्यक्तिपरक दर्शन नहीं है। नमस्कार महामंत्र में किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। पूरा मंत्र गुणात्मक है। अर्हत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—नमस्कार महामंत्र के ये पांच पद हैं। इसमें गुणवत्ता को नमस्कार किया गया है। जिस किसी व्यक्ति में पांच पदों के गुण हों, वह वंदनीय हो जाता है।

बौद्ध धर्म में शरण सूत्र है—बुद्धं सरणं गच्छामि। जैनधर्म का शरण सूत्र है—'अरहंते सरणं गच्छामि।' यहां ऋषभ या महावीर का नाम नहीं है। यदि व्यक्ति पूज्य होता, तो इस नाम से पहचान बनाने वाले अनेक व्यक्ति हो सकते हैं, पर जैन दर्शन व्यक्ति की उपासना या आराधना को मान्य नहीं करता। वैसे अर्हत भी व्यक्ति होते हैं, पर ये वे व्यक्ति होते हैं, जिनमें अर्हता होती है, गुणवत्ता होती है। दर्शन, ज्ञान और चारित्र संपन्न व्यक्ति ही वंदनीय-पूजनीय हो सकता है। ऐसा व्यक्ति भी जब मृत हो जाता है, तो वंदना की अर्हत को खो देता है, क्योंकि मृत शरीर ज्ञान, दर्शन और चारित्र से शून्य हो जाता है।

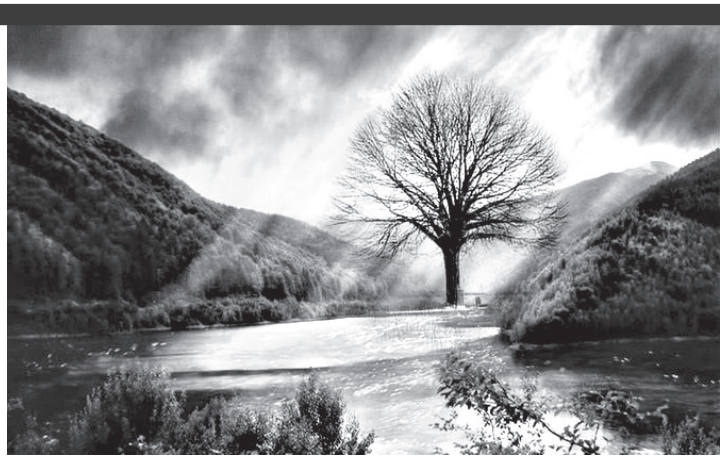

निर्वाण के उपाय

धर्म का आदि बिन्दु है—सम्यग्दर्शन और अन्तिम बिन्दु है—निर्वाण। अध्यात्म की साधना सम्यग्दर्शन से प्रारंभ होती है और वह निर्वाण को प्राप्त कर परिसंपन्न हो जाती है। जिसकी आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म और कर्म में आस्था होती है वही अध्यात्म की साधना करने का अधिकारी हो सकता है। साधना का उद्देश्य है—चित्त की निर्मलता। मुमुक्षा का भाव उस साधना का प्रेरक तत्त्व बनता है।

जैन दर्शन में मुक्ति की अर्हता के आधार पर दो प्रकार के जीव माने गए हैं—भव्य और अभव्य। जिनमें मोक्ष-गमन की योग्यता होती है, वे जीव भव्य कहलाते हैं। जिनमें मुक्त होने की योग्यता नहीं होती वे जीव अभव्य होते हैं। जीव स्वभाव से ही भव्य अथवा अभव्य होता है। यह अवस्था कर्मकृत नहीं होती, स्वाभाविक होती है। सभी भव्य जीव सिद्ध नहीं होते। परन्तु जो सिद्ध होते हैं वे भव्य ही होते हैं। अभव्य ग्रन्थिभेद नहीं कर सकता। उसमें मुमुक्षा भाव भी नहीं होता। वह मुनियों अथवा तीर्थंकरों की ऋद्धि-सिद्धि को देखकर प्रव्रजित हो सकता है, देवलोक में जा सकता है। किन्तु वह सिद्ध नहीं हो सकता। सारे भव्य जीव भी सिद्ध नहीं होते। उनमें मुमुक्षा का भाव अवश्य बना रहता है, किन्तु अनुकूल सामग्री मिलने पर ही भव्यजीव सिद्ध हो सकते हैं, सामग्री के अभाव में नहीं।

मुमुक्षा का भाव जाग्रत होना बड़ा कठिन कार्य है। इसलिए शंकराचार्य ने कहा—**'दुर्लभं मुमुक्षुत्वम्'**। मनुष्य जीवन में मुमुक्षुत्व का प्राप्त होना दुर्लभ है। वह भाव ही मनुष्य को आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। यदि जीव में मुमुक्षाभाव ही समाप्त हो गया तो वह अपनी मंजिल को कैसे प्राप्त करेगा? संस्कृत कवि ने ठीक कहा—

'निर्वाणदीपे किमु तैलदानं, चौरे गते वा किमु सावधानम्।'

दीपक के बुझने पर तेल डालने से क्या प्रयोजन? चोर के चले जाने पर सावधान होने से भी क्या प्रयोजन? जब तक दीपक जल रहा है उसमें तेल डालना उचित है। चोर के रहते हुए सावधान होने में लाभ है। मुमुक्षाभाव के होने पर उसका स्नेह ही निर्वाण-दीपशिखा को प्रज्वलित रख सकता है, मुक्ति दे सकता है।

मुक्ति का अधिकार हर व्यक्ति को है। उसमें जाति-सम्प्रदाय, वेशभूषा, लिंग आदि की बाध्यता नहीं होती। आचार्य हरिभद्रसूरी ने इस विषय में लिखा है—

'नाशाम्बरत्वे न सिताम्बरत्वे, न तर्कवादे न च तत्त्ववादे।
न पक्षपाताश्रयणेन मुक्तिः, कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव।।'

मुक्ति न तो दिगम्बरत्व में है, न श्वेताम्बरत्व में, न तर्कवाद में है, न तत्त्ववाद में है और न ही किसी एक पक्ष का आश्रय लेने में है। वास्तव में कषायों से सर्वथा मुक्त होना ही मुक्ति है।

सारी साधना मुक्ति के लिए, वीतरागता की प्राप्ति के लिए और कषायों से मुक्त होने के लिए होती है। आचार्य शुभचन्द्र ने लिखा—**'अविच्छिन्नं सुखं यत्र स मोक्षः परिपठ्यते'**—जहां शाश्वत सुख है वही मोक्ष है। राग-द्वेष मुक्ति का बाधक तत्त्व है। इसी प्रसंग में आचार्य ने लिखा—

रागद्वेषावनिर्जित्य किमरण्ये करिष्यसि?
रागद्वेषौ विनिर्जित्य किमरण्ये करिष्यसि?

जिसने राग-द्वेष को नहीं जीता वह अरण्य में जाकर क्या करेगा? जिसने राग-द्वेष को जीत लिया वह अरण्य में जाकर भी क्या करेगा? उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया—**'रागो य दोसो वि य कम्मबीयं'**—राग-द्वेष कर्म के बीज हैं। राग-द्वेष—विनिर्मुक्त व्यक्ति ही कर्ममुक्त हो सकता है, शाश्वत सुखों को पा सकता है, सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो सकता है। यही है उसकी मुक्ति।

आचार्य सोमप्रभ ने भव्यप्राणियों के सामने एक शर्त प्रस्तुत करते हुए कहा है—यदि तुम्हारा मन मोक्षपद पाने के लिए आतुर है तो मैं तुम्हारे सामने कुछेक आचरणीय बिन्दुओं को प्रस्तुत करता हूँ। वे इक्कीस आचरणीय बिन्दु प्रत्येक मुमुक्षु के लिए समाचरणीय है।

1. अर्हतों की अर्चा
2. सद्गुरु की उपासना
3. जिनशासन का स्वीकरण
4. चतुर्विध धर्मसंघ की भक्ति
5. अहिंसा का आचरण
6. सत्य का पालन
7. चौर्य का परिहार
8. शील का पालन
9. परिग्रह का त्याग
10. क्रोध का त्याग
11. मान का त्याग
12. माया का त्याग
13. लोभ का त्याग
14. सौजन्य का आचरण
15. गुणिजनों की संगति
16. इन्द्रिय- दमन
17. लक्ष्मी का स्वभाव
18. सुपात्र दान
19. तप का आचरण
20. भावना का अभ्यास
21. वैराग्य का आचरण

मुनि कन्हैयालाल

आत्म-सिद्धि

जीव-सिद्धि के लिए अनेक धर्म-ग्रंथों में जो विवेचन है, उसके संबंध में गहराई से चिंतन अपेक्षित है। गहरे चिंतन से ही उसका अनुभव हो सकता है। जीव शब्द से जीव की सिद्धि हो जाती है। वाच्य के बिना वाचक नहीं होता। वाच्य है ही नहीं, तो उसका वाचक कैसे होगा? जैसे ग्राह्य और ग्राहक। दूकान में जब ग्राह्य पदार्थ है ही नहीं, तब फिर ग्राहक वहां कैसे पहुंचेगा? ग्राह्य एवं ग्राहक, इन दोनों का पारस्परिक संबंध वैसा ही होता है जैसे वाच्य और वाचक का। अगर वाच्य होगा ही नहीं, तो वाचक शब्द की निष्पत्ति नहीं।

'जो अहंकारो भणितं अप्पलक्खणं' (आचा. चूर्णा 1/1/1) यह जो अन्दर में 'अहं' की, 'मैं' की चेतना है—यह आत्मा का लक्षण है। 'मैं हूं' इसका भान मानव मात्र को होता है किन्तु 'मैं नहीं' क्या कभी ऐसा आभास होता है? आखिर यह 'मैं' कौन? इस 'मैं' शब्द में ही जीव की सिद्धि सन्निहित है।

अहं दुखी सुखी चाहमित्येषः प्रत्यय स्फुटम्।
प्राणिना जायतेऽध्यक्षो निर्बाधोनात्मना बिना।।

(अमित. श्रा.)

—मैं सुखी हूं, मैं दुखी हूं, ऐसे जीवों को बाधारहित प्रत्यक्ष प्रतीति होती है, यह आत्मा बिना किसे होगी? जो व्यक्ति नास्तिक है—ऐलान करता है कि 'जीव आत्मा' कुछ है ही नहीं। क्या उन्हें सुखानुभूति व दुखानुभूति नहीं होती है? अवश्य होती है। तो फिर अनुभूति करने वाला आखिर होता कौन है? अनुभूति जड़-पुद्गल को नहीं होती—चैतन्य को ही होती है जिसे अनुभूति होती है—उसे 'जीव' कहते हैं।

'आत्मा है अथवा नहीं, संशय का उत्थान।
होता है यह जीव में जड़ तो है बेभान।।'

(अन्तर यात्रा)

—आत्मा है अथवा नहीं, यह जो संशय उत्पन्न हुआ—यह संशय ही यथार्थ में आत्मा के अस्तित्व का प्रमाण है। खंभा-लकड़ी के संबंध में तो कोई संशय नहीं होता, वह तो जड़ पदार्थ है—वहां चैतन्य कहां? आत्मा है अथवा नहीं, जीव का अस्तित्व कहां है? यह जिज्ञासा ही वास्तव में जीव आत्मा की वास्तविकता सिद्ध करता है। जड़ से चेतन का उद्भव नहीं होता। जीव और जड़ का अत्यंताभाव है। तिलों से तेल का प्रादुर्भाव होता है क्योंकि हर एक तिल में तेल का अस्तित्व है, तभी तो उन तिलों में से तेल निकलता है। यदि तिलों में तेल का अस्तित्व है ही नहीं, तो फिर तेल की उपलब्धि कैसे? रेत के एक-एक कण में तेल का अस्तित्व नहीं है तो फिर रेत के समूह कणों से भी तेल का उद्भव कैसे? कदापि नहीं। अतः स्वयं सिद्ध है कि चैतन्य का उद्भव जड़ से नहीं।

जो पदार्थ, जो तत्त्व तीन ही काल में न ही था, न ही है और न ही होगा। वास्तव में उसका प्रतिषेध कैसे? जीव है ही नहीं, तो फिर उसका निषेध कैसे कर सकते हैं? जीव की सार्थकता इसी से स्पष्ट हो जाती है। हमारी पांच इन्द्रियां हैं—श्रोत्रेन्द्रिय श्रवण करती है, चक्षुरिन्द्रिय देखती है, रसनेन्द्रिय रसास्वादन करती है, घ्राणेन्द्रिय सूंघती है, स्पर्शेन्द्रिय स्पर्श करती है, ये इन्द्रियां अपने-अपने विषय को ग्रहण करती हैं। दूसरी इन्द्रियों के विषय को दूसरी इन्द्रिय ग्रहण नहीं कर सकती। इसलिए अन्य इन्द्रियों द्वारा ज्ञात उस अर्थ को अन्य इन्द्रियां नहीं जान सकती हैं क्योंकि उनका पृथक क्षेत्र है—पृथक विषय। ऐसी दशा में 'मैंने पांच ही विषय जाने'—यह जो सम्मेलनात्मक ज्ञान, जोड़ रूप विज्ञान आत्मा के बिना हो नहीं सकता अनुभूति का सामूहिक प्रकटीकरण ही आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध कर देता है। आकाश नहीं दीखता, फिर भी अवगाहन के गुण से आकाश का ज्ञान होता है। इसी प्रकार आत्मा अमूर्त है, नहीं दीखती है तदपि चेतन लक्षण से ही आत्मसिद्धि स्वतः ही हो जाती है और जब शरीर से आत्मा हट जाए तो फिर रह ही क्या जाता है? जैन दर्शन की दृष्टि से आत्मा अजर है, अमर है, अविकारी है।

गीता-दर्शन में भी कहा है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

—इस आत्मा को अग्नि जला नहीं सकती, शस्त्र छेद नहीं सकता, पानी डुबो नहीं सकता, हवा सुखा नहीं सकती अतः अच्छेद्य, अभेद्य, अविकार्य—ये सब जीव के ही लक्षण माने गए हैं।

राजा परदेशी नास्तिकवादी था। भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के संवाहक परम पूजनीय केशी स्वामी से एक दिन अचानक राजा परदेशी की भेंट हुई। अनेक प्रश्न पूछे गए। केशी श्रमण ने बहुत ही सुन्दर समाधान दिया। राजा ने शरीर और जीव के एक होने का पुष्ट प्रमाण देते हुए कहा कि एक बार मैंने एक चोर को जीवित ही कुम्भी में डालकर निश्छिद्र मजबूत ढक्कन लगा दिया। उसकी देख-रेख के लिए सिपाहियों को चारों ओर तैनात कर दिया। कुछ दिनों बाद कुम्भी खोली गई तो चोर मृत पाया गया। जीव और शरीर यदि अलग-अलग होते तो जीव बाहर कैसे निकलता? शरीर भी विकृत हो जाने से उसका भी वह स्वरूप नहीं रहा अतः यह स्पष्ट है कि शरीर और जीव एक ही है।

केशी श्रमण ने बड़े ही शान्त भाव से इसका उत्तर देते हुए कहा कि जिस प्रकार चारों ओर से बंद निश्छिद्र कोठे में बोले हुए शब्द भी बाहर सुनाई पड़ जाते हैं और छिद्र भी देखने पर दिखाई नहीं पड़ता, उसी प्रकार जीव भी कुम्भी से बाहर निकल जाता है। वायु मूर्त है और जीव अमूर्त है। राजा परदेशी को समाधान मिला, संतुष्ट हुआ और जैन धर्म को स्वीकार कर त्याग-तपस्या के माध्यम से कल्याण किया।

यह नास्तिकवाद पर आस्तिकवाद की अद्वितीय विजय है। हर दृष्टि बिन्दु से आत्मा का अस्तित्व स्पष्ट है, परोक्ष अनुमान आदि प्रमाणों से भी यह सिद्ध है कि जीव है आत्मा है।

ज्ञान से श्रद्धा और श्रद्धा से ज्ञान

ज्ञान और आचरण की तरह ज्ञान और श्रद्धा का संबंध भी सापेक्ष है। ज्ञान से श्रद्धा बढ़ती है और श्रद्धा से ज्ञान बढ़ता है। उत्तराध्ययन सूत्र में बताया है—'मोक्ष की अभिलाषा से जीव अनुत्तर धर्मश्रद्धा को प्राप्त करता है। धर्मश्रद्धा से वह वैषयिक सुखों की आसक्ति छोड़ विरक्त हो जाता है, गृहस्थी को त्याग देता है।' यहां मोक्ष की अभिलाषा में ज्ञान का संकेत है। ज्ञान न हो तो मोक्ष की जिज्ञासा ही नहीं हो सकती, अभिलाषा तो उससे आगे की बात है। दूसरी ओर धर्मश्रद्धा से वैषयिक सुखों की आसक्ति या गृहत्याग की बात ज्ञान के बिना घटित ही नहीं हो सकती।

जैन साधना-मार्ग

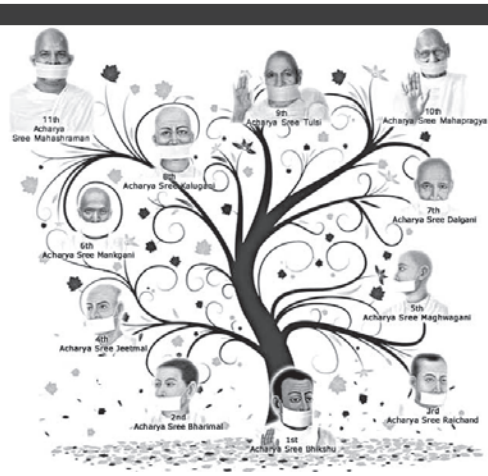

जैन साधना-मार्ग ज्ञान, दर्शन और चारित्रात्मक है। आचार्य उमा-स्वाति ने इसी त्रयंग समवाय को मोक्ष मार्ग कहा है। कहीं-कहीं चतुरंग व्यवस्था भी प्राप्त होती है। चौथा अंग है तप। यही क्रम बौद्ध शासन में रहा है। जिस साधना-पद्धति को जैनों ने त्रिपुटी में बांधा है, बौद्धों ने उसे अष्टांग व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया है। इस व्यवस्था में प्रत्येक अंग के साथ जुड़ा 'सम्यग्' शब्द पूर्ण समानता प्रकट करता है।

आराधना का प्रथम चरण : सम्यग् दर्शन

सत्य के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण, तत्त्व जिज्ञासा एवं सत्य-प्राप्ति के योग्य अन्तःकरण की पवित्रता का होना सम्यग् दर्शन है। आचार्य कुन्दकुन्द सम्यक् आराधना के विषय में लिखते हैं—निर्मल सम्यक्त्व के आराधक में निम्नोक्त चार गुण अनिवार्य हैं—

1. भेद विज्ञान
2. आत्मौपम्य-बुद्धि
3. अनाग्रह भाव
4. कषायाल्पता।

इस भूमिका के निर्मित होने के बाद ही आस्था चरित्र में परिणत होती है। दर्शन आंख है। इस आंख से जो दिखायी देता है, वह सत्य और पूर्ण सत्य होता है। इस सत्य के स्पर्श मात्र से जीवन जगमगा उठता है। दृष्टि-शुद्धता के पूर्व कोरा मुखौटा लगाया जा सकता है—अमुक श्रावक है, साधु और अहिंसक है, परन्तु यथार्थ की फसल का बीज तो सम्यग् दर्शन ही है। यह वह कुदाल है जो असत् को उखाड़कर सत् को उसी जगह प्रतिष्ठित होने का अवसर प्रदान करती है। आखिर यह अभय और आस्था के बीच संतुलन बनाए रखने वाली संयोजक कड़ी है। महावीर के शब्दों में सम्यक् दर्शन साधना की रीढ़ है, पृष्ठभूमि है, यह वह रंग है जो ज्ञान और आचरण को अपने रंग से रंगता है।

भगवान पार्श्वनाथ ने संघबद्ध साधना का प्राण संगठन और संगठन का प्राण सम्यक्त्व को बताया। भगवान महावीर ने इस दृष्टि को विशेष पोषण देते हुए नवीन अष्टांग-व्यवस्था दी।

अष्टांग व्यवस्था

1. निःशंकित—सत्य में पूर्ण भरोसा।
2. निष्कांक्षित—वैचारिक स्थिरता के बल से मूढ़ता से बचना।
3. निर्विचिकित्सा—सत्य के फल में असंदिग्धता।
4. अमूढ़ दृष्टि—असत्य की सफलता में अमोहकता।
5. उपबृंहण—यथार्थ को प्रश्रय देना और यथार्थ दृष्टाओं की सराहना करना।
6. स्थिरीकरण—जो सत्य-साधना में शिथिल हो गये हैं, उन्हें स्थिर करना।
7. वात्सल्य—संघ एवं संगठन के आधारभूत तत्त्वों के प्रति उदारता एवं करुणाभाव का होना।
8. प्रभावना—संघ और उसमें व्याप्त गुणों की महिमा करना।

प्रथम चार अंग वैयक्तिक साधना के पोषक हैं और शेष चार संघीय व्यवस्था के। अन्त में यह कहना पर्याप्त होगा—सम्यक्त्व अनात्मतट से आत्मतट की ओर चलने वाली मजबूत नौका है।

आराधना का दूसरा चरण : ज्ञान

ज्ञान और अज्ञान दिन-रात की तरह प्रत्येक प्राणी के चिदाकाश में छाये रहते हैं। किन्तु प्रकाश की यात्रा करने वाला अज्ञान की काली रात को पार करके अन्तर्यात्रा में प्रवेश पा चुका होता है। अन्तर्दर्शन की व्याख्या में अज्ञान को सब पापों का मूल बताया है, क्योंकि शेष सारे पाप इसी छाया में पलते हैं। रत्नत्रयी की व्याख्या करते हुए आचार्य अमितगति 'योगसार' में लिखते हैं—

चारित्रा दर्शन ज्ञानं, आत्म रूप निरंजनम्।
कर्मभि र्मुच्यते योगी, ध्यायमानो न संशयः।।

सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र आत्मा के निर्मल स्वरूप हैं। अर्थात् शुद्ध आत्मा का स्पर्श करके ही सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र निर्मित होते हैं। यही स्वरूप-ध्यान कर्म-मुक्ति का असंदिग्ध उपाय है। निश्चयनय की दृष्टि से जो जानता है, वही ज्ञाता ज्ञान है।

ज्ञान और उपयोग—महावीर की साधना-पद्धति में केन्द्रीय शब्द है उपयोग। उपयोग का अर्थ है—स्वयं में होना, वर्तमान में होना। जब हम उपयोग में होते हैं तब अस्तित्व अनावृत होता है। यह अनावरण महान उपलब्धि है। महावीर ने कहा—जीवन में जो भी मूल्यवान उपलब्धियां होती हैं वे सब ज्ञानोपयोग में होती हैं। जड़ पदार्थों को हम बुद्धि के संडासे से पकड़ सकते हैं, परन्तु चेतना को नहीं। चेतनाणु को पाने के लिए क्षण को पकड़ना होगा। वर्तमान समय का अनुभव ही चेतना का अनुभव है, बोध है। वर्तमान की अनुभूति के लिए चाहिए शांति और स्थिरता। रत्नत्रयी की लोकोत्तर साधना का क्रम भी यही है—कषायोपयोग से हटकर चैतन्योपयोग में रहना।

महावीर ज्ञानयोगी थे। उन्होंने ज्ञान की पवित्रता में ही चारित्र की पवित्रता को स्वीकारा। आपने कहा—पहले जागो और फिर उस जागृति में कुछ करो। ऐसा करने वाला विश्व भर के मतवादों में, पिरोयी हुई सुई की तरह, फिर कभी नहीं खोता। सम्यग्ज्ञान, 'मैं कौन हूं?' इस जिज्ञासा से प्रारम्भ होता है और अस्तित्व में लय होने के साथ समाप्त होता है।

ज्ञानाराधना के उपाय—निश्चयदृष्टि से आत्मरूप को जानना, ज्ञानाराधना है। किन्तु जनसाधारण की पहुंच वहां तक नहीं होती इसलिए व्यावहारिक ज्ञानाराधना की निम्नलिखित विधियों को जानना भी आवश्यक है।

1. वाचना : श्रुत का अध्ययन और अध्यापन।
2. पृच्छना : तत्त्वों की जानकारी के लिए नित्य नयी जिज्ञासाएं उभारते रहना।
3. परिवर्तना : आत्मज्ञान के हेतुओं तथा आत्मानुभावों को दोहराते रहना।
4. अनुप्रेक्षा : आत्मा जैसे सद्भूत तत्त्वों का चिन्तन करना।
5. धर्म कथा : अध्यात्म-विषयक चर्चाएं करना एवं सदुपदेश देना।

मोक्ष-प्राप्ति का तीसरा मार्ग : चारित्र

चारित्र का शाब्दिक अर्थ है—आत्म-तालाब को विकार-सलिल से खाली करना। चारित्र-ग्रहण की बात मात्र औपचारिक है। मूल है अन्तःकरण की पवित्रता। बीज का सामर्थ्य जैसे उसके अंकुरित होने में है वैसे ही सत्य-दर्शन का सामर्थ्य उसकी क्रियान्विति में है, क्योंकि चारित्र सत्य के अनावरण और क्रियान्वयन दोनों का हेतु है। दूसरे शब्दों में भीतर की गहराईयों में उतरना और अपनी आन्तरिक स्थितियों से परिचित होना चारित्र है। जब तक हम यह नहीं जान पायेंगे कि अन्तर के किस कोने में क्या जमा है और कितना गहरा जमाव है, तब तक हम कहां तो कुदाल मारेंगे और कैसे मारेंगे। चारित्र का मूल कार्य दर्शन और जागरण से ठहरे हुए विकारों की परतों को कुरेदना है।

महावीर ने कहा—स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलना चारित्र है। जो साधक सूक्ष्म में उतरने का संकल्प लेकर भी स्थूल को पकड़े बैठा है मैं उसे साधक नहीं मानता। अब भी उसकी दौड़ परद्रव्यों की ओर है। हम जिस वासना का त्याग करते हैं उसके साथ ही यह सोचना आवश्यक है—हमारे भीतर उस वासना की जड़ें हिलाने वाली तथा आगन्तुक विकृतियों की रोकथाम करने वाली कौन-सी आत्म-प्रवृत्ति चालू है? महावीर के शब्दों में वह है—

सावधानता, आत्म-ध्यान और स्वरूप-रमण। करने की बात हमेशा बाहर की बात होती है। संन्यास भीतर से अंकुरित होकर व्यवहार की धरती पर छाने वाली फसल है। यह एक भूमिका के बाद स्वतः फलती और फूलती है। अब मार्गदर्शन के लिए उस मुमुक्षु के पास अपना सधा हुआ मन ही होता है, विवेक के सिवाय और कोई प्रेरक नहीं होता।

चारित्र के पांच प्रकार

1. सामायिक चारित्र
2. छेदोपस्थाप्य चारित्र
3. परिहारविशुद्ध चारित्र
4. सूक्ष्म संपराय चारित्र
5. यथाख्यात चारित्र।

वृक्ष मूल की गहराई पर टिका होता है और चारित्र समता मूल पर। जहां शारीरिक और मानसिक विषमताएं होती हैं वहां प्रकम्पन होता है, द्वन्द्व होता है। हर द्वन्द्व अपने आगे और पीछे एक उलझन लेकर आता है। भविष्य के लिए चिन्ता और अतीत के कटु परिणाम उसकी उपज है, जबकि समता का सम्बन्ध केवल वर्तमान से है। जो अतीत और भविष्य में घूमता है, वह कर्म और चिन्तन की विषमता में होता है। इसलिए महावीर ने कहा—शान्त रहो। यही श्रामण्य का आधार है। समता समस्त अध्यात्म-साधना पद्धतियों की प्रस्तावना है। इसमें आत्मा की अनन्त-अनन्त ऊर्जाओं को युगपत् उजागर करने की क्षमता है। इसी स्रोत से सारे उपस्रोत निकलते हैं, अतः इसी की उपासना करो। यही चारित्र की रीढ़ है। समता आती है अप्रमत्तता से और अप्रमत्तता आती है इन्द्रिय-जय से। आराधनासार में लिखा है—चारित्राराधना के लिए प्राण असंयम और इन्द्रिय-असंयम से बचना आवश्यक है। क्योंकि चारित्र-रक्षा के लिए इन्द्रिय-संयम जितना अनिवार्य है उससे कहीं अधिक आवश्यक है प्राण-संयम। इसी संयम से आगे के द्वार खुलते हैं।

संवर योग—जैन साधना का मूल आधार संवर है। जैन परम्परा में आज तक अनेक मत-मतान्तर उत्पन्न हुए हैं, परन्तु

संवर योग के बारे में आज तक कोई विवाद खड़ा नहीं हुआ। जैन-साधना विषयक एकता बनाए रखने में 'संवर योग' का महत्त्वपूर्ण योग रहा है।

जैन दर्शन ने आश्रव एवं संवर इन दो तत्त्वों के आधार पर संसार और मोक्ष की सम्पूर्ण व्याख्या प्रदान की है। आश्रव भव-वृद्धि का हेतु है, क्योंकि यह विजातीय का आकर्षण करता है और कषाय-चेतना को बढ़ावा देता है। संवर इसके विपरीत आत्मतत्त्व की परिधि में विजातीय के अप्रवेश की व्यवस्था करता है और चित्त में जमे सूखी जल रेखा सदृश जो संस्कार हैं उन्हें यह हिलने का मौका देता है। संवर भीतर से चोट करता है। बाहर से आते हुए विकारों को रोकने की अन्तर्चेष्टा चालू होते ही जो विकार जमे पड़े हैं वे मृत्यु-भय से कांप उठते हैं। तत्त्वतः यही प्रकम्पन निर्जरा का हेतु है।

संवर के मूल भेद पांच निर्दिष्ट हुए हैं और उपभेद बीस। बीस भेदों में पाएंगे कि क्रिया-शोधन संवर का आदि चरण है। हिंसा, झूठ आदि असत् कर्म, इन्द्रिय, नोन्द्रिय व्यापार, त्रियोग (मन, वचन, काया) तथा जीवनगत सूक्ष्म असंयम, चेतना प्रवाह को बहिर्मुख करता है। इसीलिए इन्द्रिय संवर, नो इन्द्रिय-संवर, उपकरण संवर और शुचिकुशाग्र संवर जैसी व्यवस्था हुई।

कहीं-कहीं ग्रंथों में उपादेयता की दृष्टि से 57 भेदों का वर्णन भी मिलता है—

1. पांच समिति, 2. तीन गुप्ति,
3. दस यतिधर्म, 4. बारह अनुप्रेक्षा,
5. बाईस परीषह, 6. पांच चारित्र।

अन्य भारतीय दर्शनों में संवर की विस्तृत व्याख्याएं नहीं मिलतीं, किन्तु प्रकारान्तर से कुछ क्रम अवश्य बहुचर्चित रहे हैं। बौद्ध दर्शन में पांच संवरों का शील-प्रकरण में वर्णन आता है। जैसे—

1. प्रातिमोक्ष-संवर—जो शील आश्रव-सहित हैं वे सारे लौकिक हैं इसलिए उनका संवर करना प्रातिमोक्ष है। जैन दृष्टि से इस भेद की तुलना व्रत-संवर से कर सकते हैं।
2. ज्ञान-संवर—संसार में जो तृष्णा आदि स्रोत हैं, प्रज्ञा उनको रोकती है। यह दूसरा भेद सम्यक्त्व संवर से मिलता-जुलता है।
3. स्मृति-संवर—यह चक्षु आदि इन्द्रियों की रक्षा करके उनमें संवर उत्पन्न करता है।
4. क्षान्ति संवर—सर्दी, गर्मी आदि प्रतिकूलताओं को सहना तितिक्षा-संवर है।
5. तीर्थ संवर—इस संवर से साधक उत्पन्न हुए काम भोगों से पराजित नहीं होता (विशुद्ध मार्ग)।

भिक्षु के लिए इन्द्रियों से और मन से संवृत होना अत्यन्त आवश्यक है। 'धम्मपद' में एक जगह भिक्षुचर्या की विशिष्टता बताते हुए लिखा है—

1. चक्खुना संवरो भिक्खु, साधु सोतेन संवरा।
   घाणेन संवरो साधु, साधु जिह्वाय संवरो।।
2. कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो।
   मणसा संवरो साधु, साधु सव्वत्थ संवरो।।
3. सव्वत्थ संवरो भिक्खु, सव्व दुक्खा पमुच्चति।।

भगवान ने एक दिन मुमुक्षु सन्तों को सम्बोधित करते हुए कहा—संवर का प्रमाद-रहित होकर आचरण करो। यही दुःख-मुक्ति का पथ है। 'नाणी नवण कुवते' इस विधान का आधार और विस्तार दोनों इस बात को पुष्ट करते हैं कि अनाश्रव (संवर) सम्यग्-ज्ञान का परिणाम है, क्योंकि ज्ञान-सम्पन्नता के पूर्व जीवन-व्यवहारों में नयी क्रांति घटित नहीं होती। क्रांति तथा वृत्तियों के रूपान्तरण के लिए चाहिए—अन्तर्विवेक और दृष्टि सम्पन्नता। संवर सहज-निष्पन्न स्थिति है। जहां कुछ करने की चाह समाप्त हो जाती है, वहां केवल संवर ही संवर अवशेष रहता है।

साधना और संवर—साधारण मनुष्य हर कार्य कुछ बनने के लिए करता है। वह चाहता है कि मैं धार्मिक बनूं, विशिष्ट साधक बनूं, तपस्वी बनूं और आत्मज्ञानी बनूं, परन्तु महावीर ने कहा—यह बनने की चाह भटकन है। इसके रहते जो निर्मित होता है वह अवास्तविक निर्मित होता है। इसलिए केवल आत्मा (स्वयं) रह जाने के सिवाय हमारी प्रवृत्ति का कोई हेतु नहीं होना चाहिए। यही निर्लिप्त भाव संवर है।

साधक साधना के प्रथम चरण में कायसंवर करता है, क्योंकि समग्र प्रवृत्तिजाल का केन्द्र यह शरीर है। सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर का निर्माण करता है और उससे अपनी अपेक्षाएं पूर्ण करता है। यह जीवन की प्राकृतिक व्यवस्था है। विस्फोट का क्रम इससे उल्टा है। स्थूल शरीर को लक्ष्य करके जो साधनाएं और तपस्याएं की जाती हैं, वे एक सीमा के बाद द्रव्य-क्रिया मात्र रह जाती हैं। इसलिए करने की भाषा में अधिक नहीं सोचकर और नहीं रहकर, नहीं करने की भाषा में अधिक रहा जाए। संवर अक्रिया, अभाषा और निर्विचार दशा है। इस स्थिति में अध्यात्म की धार और तेज हो जाती है। परिणामस्वरूप आदि के सेन्टर रूपान्तरित होकर आगे के मार्ग को निर्बाध बनाते चले जाते हैं। यह संवर का सामर्थ्य है। निर्जरा केवल स्थूल शरीर को प्रभावित

करती है, क्योंकि सूक्ष्म निशाने पर दृष्टि टिकाए रखने के लिए निष्कंप दशा का होना अनिवार्य है, जो कि प्रवृत्ति प्रधान निर्जरा धर्म से संभावित नहीं है। इसलिए साधक क्रमशः शरीर-संवर, वाक्-संवर, श्वास-संवर, इन्द्रिय और मनोसंवर का अभ्यास करता है। आसक्ति, कषाय और प्रकम्पन की (योग) जड़ें हिलने तक का कार्य निर्जरा करती है, किन्तु इन्हें निर्मूल करने का कार्य संवर के बिना नहीं होता। इसलिए संवर का सहज अभ्यास करते रहना है।

सर्वगुणसम्पन्नता को जीवन-लक्ष्य बनाएं

■ अर्जुन मेड़तवाल

आगे बढ़ने के लिए अति आवश्यक है आत्मावलोकन। आत्मावलोकन किए बिना व्यक्ति आगे नही बढ़ सकता। प्रेक्षाध्यान का सूत्र है—**'संपिक्खए अप्पगमप्पएणं'** स्वयं के द्वारा स्वयं को देखो। स्वयं को देखने का मतलब है अपने आपको देखना। अपना आत्मावलोकन करना। अपनी कमियों को देखना। अपने दोषों पर दृष्टिपात करना। सर्वगुणसम्पन्न बनने का मार्ग सरल नहीं है। सर्वगुणसम्पन्न बनने के लिए अपने भीतर पड़े दुर्गुणों को खोजना पड़ता है—ढूंढ़ना पड़ता है। एक-एक करके उन्हें निकालना पड़ता है। आज हर आदमी दूसरों में क्या कमी है, वह तो देख लेता है लेकिन अपने आप में क्या कमी है—अपने भीतर कौन से दुर्गुण है, अवगुण है उसे देख नहीं सकता। अपनी कमियों को, अपने दुर्गुणों को निकालते-निकालते एक दिन ऐसा आता है उस दिन व्यक्ति पूर्ण-परिष्कृत हो जाता है। सभी दुर्गुण निकल जाने के बाद केवल सद्गुण बचते हैं और यही सर्वगुणसम्पन्नता है।

आत्मना युद्धस्वः

भगवान महावीर ने आत्मविशुद्धि के लिए युद्ध करने की बात कही। उन्होंने कहा—'आत्मना युद्धस्व' अपनी आत्मा से युद्ध करो। बड़ी अजीब बात लगती है। युद्ध दुश्मन से होता है। युद्ध शत्रु से होता है। अपनी ही आत्मा से युद्ध क्यों करें? भगवान ने कहा—तुम्हारा शत्रु और कोई नहीं, तुम स्वयं ही हो।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तंममित्तं च, दुपट्ठिए खुपट्ठिओं।।

आत्मा ही कर्ता है। आत्मा ही विकर्ता है। तुम कभी सुख का अनुभव करते हो, कभी दुःख का अनुभव करते हो। तुम्हें सुख या दुःख देने वाला दूसरा कोई नहीं है। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारे सुख-दुःख की जनक है। जब वह सत्प्रवृत्ति करती है तब वह मित्र बन जाती है जब वह दुष्प्रवृत्ति में रत रहती है तब वह शत्रु बन जाती है। अतः तुम युद्ध करो उस आत्मा से जो दुष्प्रवृत्ति में रत रहती है और दुःख उत्पन्न करती है। अपनी आत्मा से युद्ध करते-करते एक दिन सारे शत्रुओं को परास्त कर परम विजयी बन जाओगे।

हमारी आत्मा के साथ कषायों का घनिष्ठ नाता है। कषायों ने—क्रोध, मान, माया, लोभ ने हमारी आत्मा को दूषित बना रखा है। सर्वगुणसम्पन्नता के मार्ग में ये चारों कषाय ही सबसे बड़े अवरोध हैं।

आदमी अहंकार और ममकार में जकड़ा हुआ है। अहंकार क्रोध को उत्पन्न करता है। इस अहंकार से हमें युद्ध करना है। महाभारत के महाविनाशक बुद्ध के मूल में अहंकार ही तो था। दुर्योधन के अहंकार पर चोट हुई और महाभारत खड़ा हो गया। सोने की लंका जल कर खाक हो गई—रावण के अहंकार के कारण, अभिमान के कारण।

लोभ को भी बहुत बड़ा शत्रु माना गया है। लोभ के कारण आदमी न करने के कार्य कर लेता है। लोभ के आदमी धोखाधड़ी करता है। प्रपंचलीला करता है। मायाचार करता है। आज हर चीज में मिलावट है। कोई भी वस्तु शुद्ध नहीं मिलती। दूध में मिलावट, घी में मिलावट, आटे में मिलावट, बेसन में मिलावट, हल्दी, मिर्च, मसाले में मिलावट। प्रत्येक वस्तु में मिलावट हो रही है।

लोभ-लालच के वश आदमी आदमी की जान भी ले होता है। लोभवश आदमी कुछ भी कर सकता है।

आत्मविशुद्धि का मार्ग साधना का मार्ग है। कषायों से मुक्त होने का—आत्मा को परिष्कृत करने का मार्ग बहुत बड़ी साधना है। उस साधना से गुजरने वाला आदमी एक दिन आत्मविशुद्धि के शिखर पर पहुंच जाता है। सर्वगुणसम्पन्न बन जाता है।

सर्वगुणसम्पन्न बनने की यात्रा अंधकार से प्रकाश की ओर जाने की यात्रा है। तिमिर से ज्योति की ओर जाने की यात्रा है। मिट्टी से सुवर्ण बनने की यात्रा है। इन्सान से भगवान बनने की यात्रा है। जो अपने सारे दुर्गुणों को निकालकर सर्वगुणसम्पन्न बन जाता है वह इन्सान से भगवान बन जाता है। आत्मा से परमात्मा बन जाता है

हम भी आत्मावलोकन करते हुए—आत्मदर्शन करते हुए, अपने दुर्गुणों को निकालने का प्रयत्न करें। इन्सान से भगवान बनने का प्रयत्न करें तो जीवन और मृत्यु की इस जंजाल से सदा-सदा के लिए मुक्त हो सकते हैं और परम पद को प्राप्त कर सकते हैं।

डॉ. साध्वी शुभप्रभा

सुधार अपने हाथ

समाचार पत्र में हुई एक छोटी-सी भूल पर लोगों की आलोचना-प्रत्यालोचनाएं हुई। छींटाकसी भरे दस्तावेज सम्पादक के पास पहुंचे। संपादक ने जवाब देते हुए एक टिप्पणी लिखी—

'ऐसा वकील जो अपनी गलती की वजह से कोई मुकदमा न हारा हो, ऐसा रेडियो एनाउंसर जिसने कभी किसी शब्द का गलत उच्चारण न किया हो, ऐसा गायक जिसने कभी गलत स्वर का इस्तेमाल न किया हो, ऐसा डॉक्टर जिसके हाथ से कभी चूक न हुई हो, ऐसा पोस्टमेन जिसने गलत पते पर कभी पत्र वितरित न किया हो, ऐसी महिला जो दाल या सब्जी में कभी नमक डालना न भूली हो, आपके सप्रयास से यदि मुझे मिल जाए तो उससे मिलकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होगी और मैं अपने जीवन को धन्य समझूंगा।'

यह सर्वविदित तथ्य है कि मनुष्य गलतियों का पुतला है। भूल होना स्वाभाविक है। भूल हर एक से होती है। कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि उसने जीवन में कभी कोई भूल नहीं की है। यदि ऐसा कहने का कोई साहस करता है तो वह एक प्रकार का दंभ ही होगा।

गलती होना कोई बड़ी बात नहीं है। किन्तु गलती होने पर उस गलती का अहसास करना, उसे स्वीकार करना और पुनः उसे न दोहराने का संकल्प करना बड़ी बात होती है। सुकरात ने ठीक कहा था—'ज्ञानी वही है जिसे अपने अज्ञान की जानकारी है।'

पर प्रश्न यहां आकर अटकता है कि यह पता कैसे चले कि व्यक्ति अज्ञान से आवृत्त है? प्रमाद, असावधानी पग-पग पर उसे प्रतिहत क्यों करती है? विश्रान्ति की चाह जीवन की धवलिमा को समाप्त क्यों कर देती है? विकास का बढ़ता रथ अचानक श्लथ क्यों हो जाता है? व्यक्ति गलती कहां कर रहा है और क्यों कर रहा है?

ये कुछ प्रश्न हैं जो आपके मन में यदा-कदा कुलबुलाते हैं। यदि आप प्रियता-अप्रियता के चक्रव्यूह से बाहर निकल कर देखें, तटस्थ होकर सोचें तो इसकी सूचनाएं विभिन्न कोणों से आपको प्रतिक्षण उपलब्ध होती रहती हैं। जिसके कुछेक सांकेतिक बिन्दु ये हो सकते हैं—

सर्वप्रथम आपके भीतर बैठा Controller (नियंत्रक) आपको सचेष्ट करता है कि 'आप ऐसा न करें'। यह संकेत आपको भीतर से हर बार मिलता है। पर आप इस ओर से जान-बूझकर बेखबर बन जाते हैं।

- मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था। यह आत्म भाव, अनुताप की यह भावधारा आपको इस दिशा में सोचने का आवेदन करती है।
- गलत कार्य होने पर भीतरी धुकधुक, घबराहट, बेचैनी इस राज से पर्दा उठा देती है कि आपसे कहीं कोई चूक हुई है।
- संवेदनशील आंखें वह अनकही कहानी आपको कह देती हैं।
- गलत काम हमेशा अंधेरे या एकान्त में सबकी आंख बचाकर किया जाता है। यदि आपके भीतर बैठा मन का चोर आपको इसके लिए उकसाता है तो समझिये आप सही रास्ते पर नहीं है।
- अहंभाव व कर्तव्य-निष्ठा की कमी व्यक्ति को पथभ्रष्ट करती है।
- आत्मिक अनुशासन के अभाव में जो नियम और मर्यादा की अवहेलना करता है। वह अनैतिक कर्म की ओर अभिमुख होता है।

- दृष्टिकोण का विपर्यास पथभ्रमित के लिए पर्याप्त सामग्री है।
- उचित निर्देशन के अभाव में व्यक्ति चाहकर भी सही मार्ग उपलब्ध नहीं कर सकता।
- भौतिक आकर्षण, सुख-सुविधा का मनोभाव, ईर्ष्या, वैभाविक चेतना आदि उसे अनुचित काम करने को प्रेरित करते हैं।
- सही समझ का विकसित न होना अथवा यथार्थ को पहचाने की दृष्टि का न होना भी गुमराह होने का एक कारण है।
- परिस्थितियां, परिवेश, वातावरण, आनुवांशिकता, स्नेहाभाव आदि गलती करवाने के उद्दीपक कारक हैं।

उपर्युक्त बिन्दुओं से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति विपथगामी क्यों होता है? किन्तु केवल कारण जान लेना ही पर्याप्त नहीं होता जब तक उन निवारक तत्त्वों की ओर ध्यान केन्द्रित नहीं होगा, तब तक कोल्हू के बैल की तरह आप वहीं परिक्रमा लगाते रहेंगे। उससे एक इंच भी आगे नहीं बढ़ पाएंगे। आइए! उन निवारक तत्त्वों की ओर भी दृष्टिपात कर लें जो हमारी प्रगति का प्रतीक बन सकते हैं, गति में तीव्रता दे सकते हैं।

- अतीत का प्रतिक्रमण, वर्तमान का संवर और अनागत का प्रत्याख्यान भूल सुधारने और रोकने का सबल उपाय है।
- परिणामदर्शिता अर्थात मैं जो काम कर रहा हूं अथवा कर रही हूं उसका परिणाम क्या होगा? उस पर चिन्तन और अमल करने से जीवन क्रम बदल जाएगा।
- क्या मेरा यह कार्य मानवोचित है? इस विचारमीमांसा से आप सही रास्ते पर आ जाएंगे।
- अपने आचार, विचार, व्यवहार और संस्कार के प्रत्यक्ष द्रष्टा बने रहिए। सब ओर आपकी जय ही जय है।
- विधायक चिन्तन आपके अंधेरे गलियारे में उजाला भर देगा।
- पूर्व कर्म का अनुभव करने से अर्थात मेरा यह दुःख दर्द मेरे ही दृष्कृत का परिणाम है—ऐसा चिन्तन मन को हल्का करता है और सतर्क रहने की प्रेरणा देता है।
- किसी के द्वारा गलती बताने पर उसे कोसने या अपमानित करने का भाव भी मन में पनपने न दें अन्यथा आप दोहरी मूर्खता के शिकार हो जाएंगे।
- मैं अपने आपको बदल सकता हूं/सकती हूं—इस विचार को अवचेतन मन तक ले जाएं। सोते उठते, खाते-पीते हर क्षण इसी चिन्तन में रहें, जीवन का कायाकल्प होते देर नहीं लगेगी।
- प्रातः व सायं आत्मचिन्तन का नियमित क्रम आपके विकास का प्रथम पड़ाव होगा।
- मैं कौन हूं, क्या हूं, और मेरा करणीय क्या है?—इस त्रिपदी का अनुचिन्तन, अनुशीलन आपके लिए हितकारी होगा।
- सोते समय अपनी दैनिक चर्या का पुनर्विक्षण अवश्य हो। जहां कहीं भी त्रुटि नजर आए, उससे त्राण पाने फौरन कृतसंकल्प हो जाएं, सुधार आपके हाथ है
- स्वतः सुझाव Auto suggestion से मन की एक-एक परत खोल लें शिथिलीकरण, प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा की प्रक्रिया आपकी सहयोगी बनेगी। मन को छोटा और भारी न बनाएं।
- मन की लालसा मिटाने का सलक्ष्य प्रयास करें।
- मन की गलत मांग को अस्वीकार करना सीख लें।
- परिस्थितियों के आगे घुटने न टिकने दें। समायोजनशीलता का भाव आपका पथ प्रशस्त करेगा।
- एक बार हुई गलती से प्रेरणा लें।

ये कुछ मानक हैं अपने आपको अपने आपसे तोलने के। जो मांग सही है, उचित है, उसका स्वागत करें। उसकी अभिवंदना करें और उसे आत्मसात करने के लिए पूरे मन से तैयार हो जाएं।

असत् से सत् की ओर उठा आपका कदम इस क्षण और उस क्षण का निर्मापक होगा, वही आपके जीवन के लिए कल्याणकारी भी होगा। शुभमस्तु।

साध्वी अणिमा श्री

भीतर का परिष्कार : सिद्धि का द्वार

व्यक्ति तेजस्वी, वर्चस्वी और प्राणवान बनने एवं बने रहने के लिए साधना-आराधना और अभ्यास के नानाविध उपक्रमों से जुड़ता है। धर्माराधना और धर्मोपासना में भी अपने समय को नियोजित करता है। कुछेक व्यक्ति इन विविध उपक्रमों से जुड़कर सफल हो जाते हैं और कुछेक को विफल होते हुए भी देखा जाता है। जब पानी हर एक व्यक्ति की प्यास बुझाता है और सूर्य भी सबको समान रूप से प्रकाश व उष्मा देता है, तब एक जैसी उपासना पद्धति से जुड़ने पर भी उपलब्धि में न्यूनाधिकता क्यों रहती है?

इस संदर्भ में गहन चिंतन मंथन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि सफलता-विफलता, उत्कर्ष-अपकर्ष, उन्नति-अवनति, आरोह-अवरोह ये सब व्यक्ति की अपनी व्यक्तिगत अर्हता पर निर्भर करते हैं। यह सच है कि बिजली तो हाइटेन्शन लाइनों में निरन्तर दौड़ती रहती है परन्तु उसे अपने घर में लाने तथा उससे मशीनरी चलाने के लिए कुछ सहायक सामग्री भी जुटानी पड़ती है। मशीन घर में हो तथा लाइन भी घर के सामने से जा रही हो तो भी क्या उससे यंत्र-मशीन वगैरह चलाए जा सकते हैं? समुचित व्यवस्था के अभाव में विद्युत का उपयोग नहीं किया जा सकता। ठीक इसी तरह साधना का क्रम व्यवस्थित रहे किन्तु भीतरी जगत में अस्त-व्यस्त रहने वाला कुछ भी हस्तगत नहीं कर सकता।

कई व्यक्ति यह कहते हैं कि घृत के आसेवन से पौष्टिकता बढ़ती है किन्तु सच्चाई यह है कि घृत सेवन से पुष्ट वही बनता है, जिसकी पाचन शक्ति ठीक है। यदि अपच रोगी को घी का सेवन करवा दिया जाए तो लेने के देने पड़ जाते हैं। औषधि चाहे कितनी ही श्रेष्ठ क्यों न हो, उसका सम्पूर्ण लाभ पथ्य-परहेज पूर्वक ही उठाया जा सकता है। वैसे ही जिसने अपने भीतर को परिष्कृत कर लिया, अपने आचार-विचार को परिमार्जित कर लिया तो उसे साधना सिद्धि के द्वार तक पहुंचा देगी। अन्यथा उसका साधना परक पुरुषार्थ भी सार्थक परिणाम नहीं दे पाएगा। बादल कितना ही बरसे जिसके पास जितनी क्षमता का बर्तन होगा, वह उतना ही पानी प्राप्त कर सकेगा। किसी भी क्षेत्र में सफल होने के लिए चित्त को निर्मल बनाना होगा। मन के भीतर जमे कालुष्य रूपी कचरे को बुहारकर ही कोई तेजस्वी और प्राणवान बन सकता है।

एक बार तथागत बुद्ध परिव्रजन करते हुए अपनी शिष्य-मण्डली के साथ बसन्तपुर नगर पधारे। उस अवधि में उनके पास एक धनिक ने आकर निवेदन किया—'भंते! मैं मुक्ति पाना चाहता हूं। लम्बे अंतराल के बाद आज मेरा मनोरथ फला है। आप जैसे समर्थ पुरुष ही मुझे मुक्ति का मार्ग बता सकते हैं। प्रभो ! मेरी विनती पर ध्यान दें एवं मेरा मार्गदर्शन करें।' तथागत ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा—'आयुष्मान्! मैं तुम्हारे घर पर आकर ही तुम्हें उत्तरित करूंगा।' तथागत का घर में आगमन। इस सुखद संवाद ने उसे और अधिक भाव-विभोर बना दिया। तथागत के घर आने की प्रतीक्षा में व्यतीत किया गया समय उसे प्रतिपल पुलकित कर रहा है। उसने अपने घर को साफ किया, सजाया, संवारा और तथागत को भिक्षा देने के लिए परमान्न तैयार किया। पलक पावड़े बिछाए वह तथागत के आने की प्रतीक्षा कर रहा था।

जैसे ही कमण्डलु लिए तथागत ने उसके घर में प्रवेश किया, तब उसका रोम-रोम नाचने लगा। सूर्यविकासी कमल की तरह उसका बदन खिल गया। हर्षाश्रु बहने लगे। हर्षातिरेक से उत्फुल्ल होकर उसने कहा—'भगवन! आज आपने बड़ी कृपा की है। विभो! हमने आज खीर बनाई है। आपको परमान्न देकर ही

हम लोग उसे ग्रहण करेंगे, ऐसा हमारा विचार है।' बुद्ध ने अपना कमण्डलु उसके हाथ में दे दिया और संकेत किया कि खीर इसमें डाल दी जाए। श्रद्धालु ने खीर डालने के लिए ज्योंही हाथ आगे बढ़ाया कि सहसा उसका हाथ रुक गया, क्योंकि कमण्डलु गोबर से सना हुआ था। वह बोला—'देव! यह कमण्डलु अन्दर चारों ओर से गोबर से लिपटा हुआ है। ऐसे इस पात्र में खीर डालने से तो खीर खाने योग्य भी नहीं रहेगी।' इतना कहकर वह उस कमण्डलु को साफ करने लगा। जब कमण्डलु साफ हो गया, तब उसने उसे खीर से भरकर बुद्ध के हाथों में थमाते हुए कहा—'भंते! अब मेरी जिज्ञासा का समाधान करें। मुझे मुक्ति का पथ बतलाएं।'

तथागत की मौन भारती अब मुखर हुई। उन्होंने कहा—'वत्स! मैंने मुक्ति का मार्ग बता दिया।' जिज्ञासु स्तब्ध रह गया। वह मन ही मन सोचने लगा कि आज बुद्ध यह क्या कह रहे हैं। मुझसे एक शब्द भी नहीं बोले और कह रहे हैं कि मैंने तुम्हें मुक्ति का मार्ग बता दिया है। दो मिनट की खामोशी के बाद उसने हिम्मत करके पूछा—'भगवन! मैं कुछ समझा नहीं। आपके गहरे तत्त्व-बोध को पकड़ नहीं सका। कृपा करके आप सरल भाषा में मुझे समझाओ।' तब तथागत ने कहा—'वत्स गंदे कमण्डलु में खीर खाने योग्य नहीं रहती इसलिए तूने पहले इसको साफ किया और फिर इसमें खीर डाली। मैं तुम्हें यही समझाने के लिए कमण्डलु को सलक्ष्य गंदा करके लाया था। तुम्हें अगर मुक्ति का पथ चाहिए और आत्मज्ञान की प्यास है तो पहले अपने आत्मा रूपी पात्र पर जमे हुए कषाय, कल्मष, ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा आदि के कालुष्य का परिशोधन करो। जब तक राग-द्वेष का कचरा कम नहीं होगा तब तक मार्ग निर्बाध नहीं बन सकता। आत्मज्ञान और मुक्ति जैसी महान उपलब्धि पात्रता का विकास किए बिना प्राप्त नहीं हो सकती।'

यह प्रेरक प्रसंग साधक को सूचित कर रहा है कि यदि साधक गुण, कर्म, स्वभाव, आचरण और चिन्तन को उत्कृष्टता से परिपूर्ण कर लेता है तो अन्तःकरण का कचरा स्वतः दूर हो जाता है एवं उस निर्मल एवं प्रसन्न अन्तःकरण से की गई प्रत्येक उपासना से आशातीत लाभ हो सकता है। अनेक-अनेक साधकों ने अपना परिष्कार करके अद्भुत विभुता, सम्पदा तथा श्रेष्ठता को प्राप्त किया है। अपनी स्वीकृत साधना-उपासना में सफल होकर साधक साधारण स्थिति से ऊपर उठकर महानता के पथ का पथिक बन जाता है। तेजस्विता और प्राणवत्ता तो अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित व्यक्ति को प्रासंगिक फल के रूप में स्वतः ही प्राप्त हो जाती है।

वस्तुतः अपने उपास्य के प्रति दृढ़ निष्ठा व श्रद्धा की प्रगाढ़ता साधक को अनन्त सामर्थ्यवान बना देती है। उपासना, आराधना अपने आपमें एक महत्त्वपूर्ण विज्ञान लिए हुए है। अपनी चित्तभूमि, भावभूमि और मनोभूमि को निर्मल, उज्ज्वल तथा पवित्र बनाकर प्रत्येक उपासना-पद्धति से व्यक्ति लाभान्वित हो सकता है और अध्यात्म के उच्च शिखर का स्पर्श करके धन्य और कृतपुण्य बन सकता है।

रचनाओं हेतु आमंत्रण

''जैन भारती'' पत्रिका के आगामी अंकों के लिए सर्व चारित्रात्माओं एवं प्रबुद्ध लेखक/लेखिकाओं की शोधपूर्ण व सारगर्भित रचनाओं का हम हार्दिक स्वागत करते हैं। रचनाएँ टाइप की हुई हो या साफ अक्षरों में लिखी हों, मौलिक हों, विषय के अनुरूप हों। अन्तिम निर्णय संपादक का रहेगा। अप्रकाशित रचनाएं वापस नहीं भेजी जाएँगी।

आगामी अंक के संभावित विषय

विषय	रचना भेजने की अंतिम तिथि
वीतरागता	30 अप्रैल तक

रचना भेजने का पता : पुष्पा बैंगानी

854, वीर अपार्टमेंट, रोहिणी, सैक्टर-13, दिल्ली-110085, फोन नं. : 9311250290

डॉ. साध्वी सरलयशा

आत्म प्रबंधन प्रविधि

इक्कीसवीं सदी का चहेता विषय है—प्रबन्धन। युग चेतना, दक्षता की धुरी पर मंडरा रही है। कंपीटीशन के कठिन दौर में जीत का जश्न मनाने के लिए जरूरी है—अतिरिक्त निखार। उसका नियामक घटक है—प्रबन्धन। पीटर ड्रकर ने लिखा—'विकास आर्थिक सम्पदा से अधिक मानव शक्तियों पर निर्भर करता है और मानव शक्तियों का सृजन करना प्रबन्धन का कार्य है।' मंतव्य के संदर्भ में महत्त्व का मुद्दा है—मानव की सूक्ष्म शक्तियों को प्रकाशित करने वाले तत्त्वों की खोज।

बहुत पहले परम सत्यवेत्ता अर्हत् महावीर ने आने वाले युग की मांग को पहचाना। उनके अनुसार मानव शक्तियों का पुंज है। इसके प्रबन्धन हेतु भगवान ने कतिपय सूक्त प्रदान किए। जो मानव की सूक्ष्म शक्तियों के सम्यक् नियोजन में 'हेल्प लाईन' का काम करते हैं।

वीतराग वाणी में निहित कतिपय सूक्तों को वर्तमान संदर्भ में सेल्फ मेनेजमेंट के टिप्स के रूप में समझा जा सकता है। मानव चेतना से जुड़े सूक्ष्म तथ्यों का विमर्श इस प्रकार जाना जा सकता हैं—

संपिक्खई अप्पगमप्पएणं

आत्म दर्शन के पिपासु को संबोधित करते हुए महावीर प्रभु ने संदेश दिया—'आत्मा से आत्मा को देखें।' स्वरूप उपलब्धि की पहली शर्त है—स्व निरीक्षण। अध्यात्म विद्या का अहम् मुद्दा है—आत्म निरीक्षण जिसे हम स्व-प्रबन्धन कह सकते हैं। इसका स्पष्ट इंगित है अपने कषाय वलय, भाव तंत्र और योग त्रिपुटि को पवित्र रखना। समस्त दूषित वृत्तियों-प्रवृत्तियों का निग्रह, संयमन एवं परिष्कार करना।

परिष्कार की प्रक्रिया आत्म दर्शन से ही शुरू होती है। दिन का अधिकांश समय दूसरों को देखने में बीत जाता है। बड़ी मुश्किल से कुछ पल ही स्वकेन्द्रित हो पाते हैं। ऐसा भी बहुत कम लोगों के साथ हो पाता है। इस तथ्य को उकेरती है अग्रिम काव्य पंक्तियां—

'दूसरों से मिलना बहुत आसान है सखी,
अपनी हस्ती से मुलाकात बड़ी मुश्किल है।
आओ मिलकर बैठे आपस में बात करें,
चार कदम ही सही चलने का साथ करें।
दूरी से दूरी बढ़ती जाएगी सदा,
कभी तो हम खुद से खुद की मुलाकात करें।।'

अध्यात्म के पायदान पर स्व-प्रबन्धन का उद्देश्य है—स्वयं से स्वयं के (अपना) परिवर्तन का मार्ग ढूंढ़ना। अपूर्णता से पूर्णता की ओर प्रस्थान करना। आत्म-निरीक्षण पूर्वक आत्मा में रमण करना।

मैनेजमेंट विशेषज्ञ आज अध्यात्म की राहों के समर्थक बन रहे हैं। उनका कहना है कि व्यक्ति की असफलता का मुख्य कारण वह स्वयं है। क्योंकि वह अपने जीवन से सरोकार रखने वाली छोटी-छोटी बातों पर ध्यान केन्द्रित नहीं करता है। जबकि जीवन की सफलता हेतु 'माइक्रो मैनेजमेंट' को अपनाना जरूरी है। अधिकांश लोग लक्ष्य हासिल करने के लिए बड़ी-बड़ी प्लानिंग तो कर लेते हैं। पर खुद से जुड़ी छोटी-छोटी बातों अथवा आदतों पर ध्यान नहीं देते। बेशक इंसान दूसरों को सुधारना चाहता है। परन्तु स्वयं की कमियों को नकारता रहता है। जो सफलता के लिए प्रश्न चिह्न खड़ा कर देती है। सफल बनने के लिए स्वयं का परिष्कार जरूरी है। स्व निरीक्षण करने वाला पूर्णता को हासिल कर सकता है।

पुरिसा! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ

आत्म दर्शन की प्रक्रिया सुगम कैसे बने? इस तथ्य को प्रकाशित करने वाली आर्षवाणी का संबोध है—'अपनी आत्मा का निग्रह कर' यानी अपनी आत्मा को सम्यक् उपायों से जीत लो। अपनी वृतियों पर कंट्रोल पाना सरल नहीं है। फिर भी यह आत्मोपलब्धि के लिए जरूरी है।

व्यक्ति दूसरों को अपने अधीन बनाना चाहता है, पर वह स्वयं पर नियंत्रण करना भूल जाता है। वस्तुतः स्वयं की उच्छृंखल वृत्तियां ही आत्म पतन का कारण बनती हैं। अध्यात्म के आचार्यों ने सबसे अधिक बल आत्मा की रक्षा पर दिया। आज की भाषा में सेल्फ मैनेजमेंट का मार्ग प्रशस्त किया। गहराई से मनन करने पर मैनेजमेंट के 'एम' में समाया है—स्व-प्रबन्धन का राज। 'एम' का भौतिक पक्ष मनी, मार्केट, मैटेरियल, मशीन को मैनेज करना है। इसके साथ ही 'एम' मैन को यानी स्वयं को न भूलें। दूसरे को मैनेज करने से पहले स्वयं को मैनेज करना जरूरी है। इसके लिए स्वयं को देखना होगा। स्व निरीक्षण अपने भीतर छिपी अर्हताओं को उजागर करने का श्रेष्ठत्तम उपाय है। जिसने भी इसको अपनाया उसने सफलता के साथ परम सिद्धि का मार्ग प्रशस्त किया है।

अप्पाणरक्खी चरमप्पमत्तो

आत्म सुरक्षा की चेतना को झनझनाने वाला एक और आर्षवचन उद्गारित हुआ। अर्हत् भगवान महावीर ने कहा—'आत्मा की रक्षा करो, कभी प्रमाद मत करो।' सरल शब्दों में आत्म गुणों की रक्षा के लिए सतत जागरूक रहो।

प्रश्न है आत्मा की रक्षा कैसे करे? सर्वप्रथम अपने स्वरूप, स्वभाव और आचरण के प्रति जागरूक बने। स्वयं को दुर्गुणों के दलदल से उबारा जाए। स्मरण रहे, दूसरे को धोखा देना आत्म प्रवंचना है। बार-बार गुस्सा करना स्वयं के आत्म गुणों का दहन करना है। समस्त विभावों में जीना आत्म विस्मृति है। व्यक्ति स्वयं मंथन करे, श्रेष्ठता का मानक मैं स्वयं हूँ। फिर देखें, सब कुछ अच्छा ही नजर आएगा—'एव्रीथिंग इज द बेस्ट' हर चीज श्रेष्ठ है। श्रेष्ठता की सर्जक हमारी आत्मा ही है। उसकी रक्षा ही श्रेष्ठता का वरण है।

टेक्नोलोजी के वायरलेस ब्रांड को चुनौती देने वाला सुपर वायरलेस मानव का मन है। उसको समझना वास्तव में रहस्यमयी पहेली है। डिवाइस और एप की मदद से कम्प्यूटर, लेपटोप, ऑडियो, विडियो आदि को ऐच्छिक रूप से ट्रांसमिट किया जाता है। ट्रांसमिट के ये साधन वैज्ञानिक विकास के सबूत हैं। इनका निर्माण इंसान के कल्पनाशील मन ने किया है। उसकी मानस तरंगों को समझ पाना बड़ा कठिन है। ऐसे में अध्यात्म के मंच से मन के स्वरूप को समझने का मार्ग बताया गया। उसके प्रबन्धन पर समुचित प्रकाश डाला गया।

मणो साहसिओ भीमो दुट्ठस्सो परिधावई

मन के स्वरूप और उसकी गति का ज्ञान महत्त्वपूर्ण है। इसे प्रस्तुत करने वाली यह आर्षवाणी जिज्ञासु के लिए अनमोल सौगात है। 'यह जो साहसिक, भयंकर, दुष्ट-अश्व दौड़ रहा है, वह मन है।' मन को साहसिक यानी बिना सोचे फौलादी निर्णायक कहा गया। उसको निरंकुश घोड़े के समान गतिशील प्रकृति का माना गया है। बड़ी पेचीदा है मन की प्रकृति।

केशीस्वामी ने गौतम स्वामी से प्रश्न किया—मन बड़ी विचित्र प्रकृति और गति वाला है। आपने इसको वश में कैसे किया? प्रस्तुत जिज्ञासा न केवल केशीस्वामी की ही है, अपितु हरेक प्रबुद्ध मानस में उठती है। इसे समाहित करते हुए गौतम स्वामी ने बताया—'धर्म की शिक्षा के कारण उत्तम जाति का अश्व हो गया मेरा मन' अर्थात् मेरे मन की गति मेरे अधीन है। जाहिर है धर्म की शिक्षा से मन नियंत्रित होता है। समता, सहिष्णुता, क्षमा, करुणा, सद्भावना आदि से मन को साधा जा सकता है। धर्म की धारा से जुड़कर मन सबल और सशक्त बन जाता है।

कायर मन अनेक विपत्तियों का घर बन जाता है। स्मरण रहे—'निर्बल शरीर पर जिस प्रकार वातावरण का असर जल्दी होता है, उसी प्रकार निर्बल मन पर निमित्त का असर अधिक होता है।' यदाकदा व्यक्ति किंकर्त्तव्यविमूढ़ता से घिर जाता है। इसका निदर्शन है—गीता का चहेता पात्र धनुर्धारी अर्जुन का मन युद्ध भूमि में क्लीव हो गया। उस बेला में वासुदेव श्रीकृष्ण ने कर्त्तव्य बोध की शिक्षा देकर इस्पाती बनाया था। मजबूत मनोबल के द्वारा परिस्थितियों के पहाड़ को राई में बदला जा सकता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपने फौलादी मनोबल के सहारे भारत का भविष्य बदला। अंग्रेजों की हर हरकत को झेलकर भी देश को आजादी का उपहार दिया।

'इंसान अपनी खुद की चुंबकीय ऊर्जा का प्रबंधन करता है।' कथन के आलोक में मन की शक्ति को समझना जरूरी है। उसका सम्यक् नियोजन करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आज दुनिया का एक बड़ा प्रतिशत मानस व्यथा से पीड़ित है। भौतिक ऐशोआराम के साधन मुहैय्या होने के बावजूद व्यक्ति अशांत है। मन बेचैन, अनमना, असंतुष्ट, निराश और डिप्रेस्ड है। इस त्रासदी से उबरने हेतु मन का सम्यक् निवेश जरूरी है।

मणं पि न पओसए

मन को स्मार्ट बनाये रखने की चाबी क्या है? इसका रहस्य उजागर करते हुए महावीर प्रभु ने प्रतिबोध दिया—'मन में भी

द्वेष न लाए।' मन में किसी के प्रति विद्वेष है, कालुष्य है तो उसका प्रतिबिम्ब छलकेगा। मन की रूग्णता या स्वस्थता का आईना है व्यक्ति का चेहरा। बोलचाल की भाषा मे चेहरा चुगली खाता है। मनुष्य का मन ही स्वर्ग और नरक का सर्जक है। यदि मन दूषित है तो क्रोध, कपट, कामुकता, बैर, विरोध जैसे कार्यों में रस आएगा। ये नरक के नियामक तत्त्व हैं। दूसरी ओर करुणा, क्षमा, त्यागभावना जैसे सद्गुणों का अनुशीलन ही दिव्यता का प्रतीक है।

'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।' सूक्त का स्पष्ट इंगित है कि मनुष्य अपने मन में बैठे कलुषित भावों पर विजय प्राप्त करे। चूंकि 'मैदान की हार से भी मन की हार ज्यादा भयंकर होती है। वासना की अधीनता मन की हार का ही परिणाम हैं।' वर्तमान के संदर्भ में वासना के तांडव को बलात्कार और नाबालिग यौन-शोषण के रूप देखा जा सकता है। इसका कारगर उपाय है—मन की तुच्छ मांग का निरीक्षणपूर्वक बहिष्कार करना।

मन के समुचित निवेश का अभिप्राय है इस पर काबू पाना। मन की मांग को विवके पूर्वक परिष्कृत करना। ज्ञानी पुरुष अपने मन की हर मांग को कभी पूरा नहीं करते। वे अपने मन को अनेक तरह से प्रशिक्षणपूर्वक वश में करते है। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है।

एक महात्मा बाजार से गुजर रहा था। रास्ते में खजूर देखे। मन में आया खजूर लेना है। उसने अपने मन को समझाया और चल दिए। उस पूरी रात महात्मा सो नहीं पाया।

प्रातः होते ही महात्मा जंगल में गया। जितना उठा सकते थे उससे भी भारी लकड़ियों का गट्ठर बनाया। उठाकर चले। अपने मन से कहा—यदि तुझे खजूर खाना है तो बोझ उठाना ही पड़ेगा। खुद गिरते, गट्ठर को गिराते हुए बड़ी कठिनाई से दो-ढाई मील का रास्ता पार किया। पसीने से तरबतर होकर शहर में पहुंचे।

लकड़ियों के गट्ठर को बेचा। पैसे लेकर खजूर खरीदने बाजार में पहुंचे। महात्मा का मन खजूर को सामने देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। खजूर खरीदे। पर महात्मा को अपने मन की मांग बड़ी मनहूस लगी। उसने अपने मन से कहा आज तूने खजूर मांगा है, कल दूसरी इच्छा करेगा। आगे अच्छे-अच्छे कपड़े, स्त्री मांगेगा। अगर स्त्री आई तो बाल-बच्चे भी होंगे। तब तो मैं तेरा पूरी तरह गुलाम बन जाऊंगा।

महात्मा और उसके मन दोनों में द्वन्द चला। आखिर महात्मा की जीत हुई। सामने से मुसाफिर गुजर रहा था। महात्मा ने उसको बुलाया। सारे खजूर उसे दे दिये। खुद को मन का गुलाम बनने से बचा लिया। इस उदाहरण से सीख मिलती है कि मन की हर मांग को कभी पूरा न किया जाए। यदि मन की हर मांग पूरी करते रहे तो वह हमारा मालिक और हम उसके दास बन जाएंगे।

बौद्धिक क्षमता और समझ की दक्षता का पैरामीटर है—मन। 'मनः प्रसत्ति', मानसिक स्वस्थता कर्मजा शक्ति की रसद है। पवित्र मन, निर्मल और पारदर्शी बनकर स्वयं के लिए आनंददायक बनता है। परिवेश के लिए वरदान साबित होता है। इसका प्राणवान उपनय है—रैदास का अनुभूत कथन—'मन चंगा तो कठौती में गंगा।' इसका संवादी है—शेक्सपियर का मंतव्य—'निष्कलंक मन को सरलता से प्रभावित नहीं किया जा सकता।' मन की तुष्टि नैतिक मूल्यों से होती है। जो जितना 'वेल्यू ऑरियेन्टेड' है उसका मानसिक स्तर उतना ही प्रौन्नत होगा। इसकी प्रफुल्लता और समृद्धि के लिए प्रेम, दया, करुणा का विकास किया जाए। परोपकारिता जैसे मानवीय मूल्यों का मनन जरूरी है। धार्मिक दृष्टि से अध्यात्म चेतना का विकास मन के सम्यक् प्रबंधन का रहस्य है।

मानव के स्थूल व्यवहार की जड़ें बहुत गहरे अंतर-जगत में समाई हुई है। उसके संचरण का सेतु है—भावनात्मक स्तर। भावनाएं ऊर्जा का स्रोत हैं। ये ही लक्ष्य तक ले जाने वाला ईंधन हैं। व्यक्ति की भावनाएं कैसी हैं? उन्हीं से उसका व्यक्तित्व और व्यवहार बनता है।

भावणाहि य सुद्धाहिं, सम्मं भावेत्तु अप्पयं

आत्म विशुद्धि के मार्ग को प्रशस्त बनाने वाली वीतराग वाणी का संदेश है—'विशुद्ध भावनाओं के द्वारा आत्मा को भली-भांति भावित करें।' सरल भाषा में कहें तो विशुद्ध भावना से आत्म शुद्धि के ग्राफ को बढ़ाएं। चूंकि व्यक्ति की भावनाएं ही उसके उत्थान और पतन का कारण बनती हैं।

भावना के अनुरूप ही दुनिया का रूप नजर आता है। इसकी पुष्टि थॉमस ड्रेयर के कथन से होती है—'अगर आप प्रेमपूर्ण हैं, मददगार हैं तो दुनिया भी आपके लिए प्रेमभरी, दोस्ताना और मददगार साबित होगी। दुनिया वही है जो आप हैं।' स्पष्ट है आंतरिक भावनाओं का प्रतिबिंब ही दृश्य जगत में आकार लेता है। भावना के वायब्रेशन जैसे आपके हैं वैसे ही सामने वाले के बन सकते हैं।

भाव तंत्र में उठने वाली प्रशस्त-अप्रशस्त तरंगें भावनाओं की सर्जक हैं। हेय-ज्ञेय-उपादेय बुद्धि से उनका परिष्कार किया जाए। विवेक पूर्वक संचरण ही भावनात्मक प्रबंधन का अभिप्राय है। दूषित भावना पतन और पवित्र भावना उत्थान की नियामक होती है। उदाहरण के तौर पर मगरमच्छ की भौहों में तंदुलमत्स्य रहता है। वह अन्य मछलियों अथवा जीव-जन्तुओं को खाने की भावना मात्र से सातवीं नरक तक का बंधन कर लेता है। यद्यपि खा नहीं सकता। पर कलुषित भावना से अपना आत्म पतन कर लेता है। दूसरी ओर विशुद्ध भावना से प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

भावना शुद्धि पर बल देते हुए कहा—'जिसकी आत्मा भावना योग से शुद्ध है वह तट पर पहुंची हुई नौका की भांति सब दुःखों से मुक्त हो जाता है।' प्रशस्त भावना की श्रीवृद्धि में सोलह भावनाओं का अनुचिंतन, मनन महत्त्वपूर्ण है।

सोच का व्यक्तित्व विकास से गहरा संबंध है। व्यक्ति के आंतरिक सौंदर्य को निखारने और विद्रूप बनाने वाला मुख्य घटक है—विचार। इसकी तरंगें प्रकाश और विद्युत के वेग से भी अधिक तीव्र होती है। वैज्ञानिक मत के अनुसार—

- प्रकाश का वेग एक सेकंड में एक लाख 86 हजार मील गति करता है।
- विद्युत का वेग एक सेकंड में दो लाख 88 हजार मील गतिशील है।
- विचारों का वेग एक सेकंड में बाईस लाख पैसठ हजार बीस मील गतिशील होता है।

सोच के मुताबिक विचारों की तरंगें नेगेटिव और पोजिटिव में परिणत होती हैं। पर दोनों के परिणाम में आकाश-पाताल का अन्तर है। एक का वास्ता सफलता से है, दूसरे का विफलता से। एक सकारात्मक यानी आशावादी बनाता है, दूसरा निराशा के चक्रवात में धकेल देता है।

नकारात्मक और सकारात्मक सोच में एक तरह का गुरुत्वाकर्षण होता है। नेगेटिव विचार रुग्ण मानसिकता के जनक होते हैं। इनकी उत्पत्ति असुरक्षा के भाव एवं अनिश्चितता से होती है। निराशा, हताशा, बेचैनी, उद्दण्डता अथवा निठ्ठलापन उसके स्फुलिंग हैं। नकारात्मक विचार शरीर और मस्तिष्क की कार्यक्षमता को बुरी तरह प्रभावित करते हैं। इतना ही नहीं यह साइकोसोमेटिक बीमारियों का जनक भी है।

पोजिटिव विचार स्वस्थ मानसिकता के सर्जक हैं। सकारात्मक नजरिया इसकी परिणति है। आनंद, प्रेम, आशा, दया, उत्साह, समझदारी, सृजनात्मकता उसके प्रतिफल हैं। व्यवहारिक धरातल पर उसकी पहचान शांत मस्तिष्क, आदर्श जीवन और स्वस्थ शरीर से की जाती है। अतः सकारात्मक सोच महज एक उत्साह बढ़ाने वाला विचार ही नहीं है। इसका प्रभाव व्यक्तित्व और सृजनात्मकता पर भी पड़ता है। जिंदगी के हर क्षेत्र में कामयाबी का सकारात्मक नजरिये से गहरा सम्बन्ध है।

'सोच बदलो—जिंदगी बदलो' ब्रायन ट्रेसी के कथन में यथार्थता का चित्रण है। चूंकि व्यक्ति जैसा सोचता है उसकी प्रतिछाया ही उसके दिल, दिमाग और देह पर आकार लेती है। इस तथ्य को उजागर करती है अग्रिम पंक्तियां—

'सोच बदली सितारा बदल गया,
नजरें बदली नजारा बदल गया।
सोए हुए लोगों से क्रांति नहीं होती है,
दिशा बदली किनारा बदल गया।।'

आंतरिक व्यक्तित्व को सुन्दर बनाने के लिए अपनी सोच को निरंतर तराशें। संकीर्ण सोच में घमंड, ईर्ष्या और विद्वेष की विकृतियां पलती हैं। उसमें पानी का भरा आधा गिलास खाली ही नजर आता है। इसके विपरीत सकारात्मक सोच के परिणाम दिल से दिल को जोड़ते हैं। संबंधों में मिठास घोलते हैं। जीवन को सार्थकता एवं सफलता से जोड़ते हैं। 'सकारात्मक सोच के साथ चार भाई चालीस साल तक साथ रह सकते हैं, वही नकारात्मक सोच चार मिनट में उन्हें तोड़ सकती है।' जीवन में घटने वाले अनिष्ट घटना चक्र को सकारात्मक सोच से बदला जा सकता है।

अस्तु, वीतराग सूक्तों के आदेशों को जीवन में उतारा जाए। इससे आन्तरिक सौंदर्य निखरेगा। व्यवहार में कौशल बढ़ेगा। संक्षेप में, समग्र सफलता का राज है—सेल्फ मैनेजमेंट के सूत्रों का अनुशीलन। मानव आत्मदर्शन, पवित्र मन, विशुद्ध भाव और सात्विक सकारात्मक सोच से संपन्न बनें। इससे परिपूर्ण व्यक्ति ही जन मानस के आकर्षण का केन्द्र बनता है। सफलता की डगर पर आत्म प्रबन्धन हेतु निम्न प्रयोगों को अपनाया जाए—

- समवृत्ति श्वास प्रेक्षा श्वास संयम के साथ।
- भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास।
- आकाश दर्शन का प्रयोग।
- दर्शन केन्द्र पर संकल्प का प्रयोग-अन्तर्दृष्टि का विकास हो रहा है।

साध्वी पुण्ययशा

ता देव! दिज्ज बोहिं

स्तुतिकार श्रुत केवली आचार्य भद्रबाहु ने प्रभु पार्श्व की स्तुति से स्वयं की कर्म निर्जरा व मुक्ति प्राप्ति की अभिलाषा को ता देव! दिज्ज बोहिं भवे भवे पास जिणचंद! पंक्ति से अभिव्यक्त किया है। हे जिणचन्द्र! मुझे हर जन्म में बोधि देना जिससे मैं आपकी निरन्तर भक्ति कर सकूं और भव सागर को तर सकूं। अर्थात मेरी क्षयोपशम सम्यक्त्व जब तक क्षायिक सम्यक्त्व में परिणत न हो तब तक भव-भव में मेरी चेतना में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन व सम्यक् चारित्र रूप संबोधि का प्रकाश जगमगाता रहे।

बोधि शब्द की व्याख्या

बोधि परमात्मदशा का बीज है। जिस आत्मा में संबोधि रूपी बीज का वपन हो गया वह आत्मा धन्य है क्योंकि एक दिन उसे वह परम श्रेष्ठ फल अवश्य प्राप्त होगा जिसे पाकर कुछ भी पाना शेष नहीं रहता।

जैसे मंदिर नींव के आधार पर स्थिर रहता है और शिखर उसकी शोभा में वृद्धि करता है वैसे ही साधना रूपी मंदिर की नींव बोधि और शिखर सर्वज्ञता है। भगवान पार्श्व के लिए उत्तराध्ययन (केशी-गोतम) में एक संबोधन है 'संबुद्धप्पायसव्वन्नू' वे संबुद्ध आत्मा और सर्वज्ञ थे।

नींव और शिखर के कथन में मंदिर का बोध हो जाता है। इसी प्रकार संबुद्ध और सर्वज्ञ इन दो विशेषणों के द्वारा भगवान पार्श्व का साधना काल गृहीत हो जाता है अर्थात साधना के प्रारंभ से लेकर साधना के फल की प्राप्ति तक का सारा क्रम पकड़ में आ जाता है।

'बोधि' शब्द 'बुद्ध' धातु से निष्पन्न है। इसका अर्थ है ज्ञान या विवेक। अध्यात्म के क्षेत्र में इसका अर्थ है—आत्मबोध। बोधि और ज्ञान एक नहीं है। सामान्य ज्ञान के लिए बोधि का प्रयोग नहीं हो सकता। ज्ञान पुस्तकों के आधार पर होने वाली अवगति है और बोधि आन्तरिक विशुद्धि से स्वयं प्रस्फुटित होने वाला ज्ञान है। इसे अतीन्द्रिय ज्ञान या विशिष्ट ज्ञान भी कहा जा सकता है।

दूसरे शब्दों में कहें तो ज्ञान-दर्शन और चारित्र की सम्यक् युति बोधि है। असोच्चा केवली इसके स्फुट निदर्शन है। उनमें आन्तरिक विशुद्धि से प्रज्ञा का इतना जागरण हो जाता है कि वे केवली बन जाते हैं। जैसे चंदन का भार वहन करने वाला गधा भार का भागी होता है, चंदन की सौरभ का नहीं। वैसे ही चारित्र-विहीन ज्ञानी भी केवल मात्र ज्ञान का भागी होता है, मोक्ष सुगति का नहीं। इसी दृष्टि से आचार्य तुलसी ने कहा—

बिन वैराग भेख साधु रो, भार गधे पर हाथी रो।
कॉच मिणकलो कठै, कठै बो अनमोलो संयम हीरो।।

स्थानांग सूत्र में तीन प्रकार की बोधि का उल्लेख मिलता है—

1. ज्ञान बोधि 2. दर्शन बोधि 3. चारित्र बोधि

वृत्तिकार ने इसका अर्थ सम्यक् बोधि किया है।

सूत्रकृतांग में **'णो सुलभं च बोहिं च आहिय'** में प्रयुक्त 'बोधि' शब्द का अर्थ वृत्तिकार ने सम्यक् दर्शन की प्राप्ति किया है।

आचार्य कुन्दकुन्द के अनुसार जिस उपाय से सद्ज्ञान उत्पन्न होता है उस उपाय चिंता को बोधि कहते है। बृहदवृत्तिकार ने बोधि का अर्थ जिन प्रणित धर्म की प्राप्ति किया है।

उपरोक्त सभी संदर्भो में बोधि का अर्थ है—सम्यक् दर्शन। यह मोक्ष प्राप्ति का पहला सोपान है। उसके पश्चात संयम की साधना तथा उसकी फलश्रुति है मोक्ष।

बोधि, जीव के उत्थान में जितना प्रबल और प्रमुख हेतु है उतना ही दुर्लभ है उसे प्राप्त करना। कदाचित् यत् किंचित् अन्तर पुरुषार्थ के जागृत होने पर बोधि प्राप्त हो जाती है तो उसे संभालकर सहेजकर रखना मुश्किल है। उसकी प्राप्ति के बाद विकास के लिए सतत साधना की आवश्यकता रहती है। यद्यपि कोई-कोई जीव संबोधि प्राप्ति के पश्चात तुरंत ही अंतरंग पुरुषार्थ को प्रबल, प्रबलतम करके शीघ्र सिद्धि का वरण कर लेते हैं यद्यपि सब जीवों के लिए ऐसा क्रम नहीं है। अधिकांश जीवों को बोधि प्राप्ति के पश्चात विशेष साधना करनी पड़ती है।

यदि पुरुषार्थ की जागृति से पूर्व तद्रूप कर्मों के उदय होने पर बोधि विलीन हो गई तो अनंत काल के लिए उसका वियोग हो सकता है। इसलिए स्तुतिकार ने कहा **ता देव! दिज्ज बोहिं भवे भवे पास जिणचंद!** हाँ यह बात अवश्य निश्चित है कि जिसने पल भर के लिए बोधी प्राप्त कर ली वह अधिक से अधिक देश न्यून अर्द्धपुद्गल परावर्त्तन जितने काल में परमात्म पद अवश्य ही प्राप्त करेगा।

सुलभ बोधि के कारण

जिन सत्कार्यों से जीव का धर्म प्राप्त करना सरल हो जाता है और बिना कठिनाई के धर्म को समझकर स्वीकार किया जा सकता है उन्हें सुलभ बोधि के कारण कहा जाता है। ये कारण दुर्लभ बोधि के कारणों से विपरीत हैं, यथा—

अरिहंत का गुण गान करना—जैसे अरिंहत भगवान राग-द्वेष को नष्ट करके वीतराग हुए हैं, वे सर्वज्ञ—सर्वदर्शी हैं। देवेन्द्र भी उनकी वंदना करते हैं। उनकी वाणी पूर्ण सत्य और हितकारी हैं। वे मोक्ष गामी हैं। उन्हें मेरा नमस्कार हो।

अरिहंत प्रणीत धर्म के गुणगान करना—वस्तु स्वरूप को प्रकाशित करने में सूर्य के समान गुणरत्नों का समुद्र, सभी जीवों का परम हितैषी बंधु ऐसा श्रुत चरित्र रूप जिनधर्म जयवन्त हो।

आचार्य, उपाध्याय के गुणगान करना—परम आचार कुशल, परमोपकारी, बहुश्रुत, श्रद्धा-घृति-शक्ति संपन्न, चतुर्विध धर्म संघ के शास्ता, मोक्ष मार्ग के नेता—ऐसे अष्ट गणि संपदा से संपन्न आचार्य और श्रुतदाता उपाध्याय को मेरा नमस्कार हो।

संघ की स्तुति करना—संसार में सर्वोत्तम गुणों का भंडार, जिन धर्म को धारण करके प्रवर्त्तन करने वाला—ऐसा जंगम तीर्थ रूप संघ प्रतिदिन उन्नत होता रहें।

तप और ब्रह्मचर्य आदि शील का पालन कर जो देव हुए उनकी प्रशंसा करना—जैसे, अहो! शील का कैसा उत्तम प्रभाव है। जिन्होंने काम पर विजय पाई, जिन्होंने भोग को रोग मानकर उसका त्याग किया और तप के द्वारा कर्मों की निर्जरा की। वे कुछ कर्मों के शेष रहने से मोक्ष नहीं गये पर महान ऋद्धिशाली देव हुए हैं इत्यादि।

इस प्रकार धर्म, धर्मदाता, धर्मनेता आदि का गुणगान करने से भविष्य में परभव में धर्म की प्राप्ति सुलभ होती है। इसलिए उपरोक्त बिंदुओं के विपरीत आचरण करने वाले दुर्लभ बोधि के कारणों का त्याग कर सुलभ बोधि के कारणों का विशेष रूप से चिंतन व पालन करना चाहिए।

बोधि की प्राप्ति कब?

बोधि प्राप्ति का आन्तरिक कारण अनंतानुबंधी (तीव्रतम) क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व-मोहनीय, मिथ्यात्व-मोहनीय और सम्यक् मिथ्यात्व मोहनीय-मोह कर्म की इन सात प्रकृतियों का उपशम होने से उपशम बोधि, क्षय होने से क्षायिक बोधि और कुछ का उपशम तथा कुछ का क्षय होने से क्षयोपशम बोधि की प्राप्ति होती हैं।

इन सात प्रकृतियों का उपशम आदि होने का बाह्य कारण सामान्यतः द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव है। उसमें द्रव्य में तो साक्षात् तीर्थंकर को देखना आदि प्रधान है, क्षेत्र में समवसरणादि प्रधान है, काल में अर्द्धपुद्गल परावर्त्तन संसार भ्रमण शेष रहे तब तथा भाव से यथाप्रवृत्तिकरण आदि की प्रक्रिया है।

जीव पहले तो अकाम निर्जरा द्वारा 69 कोटाकोटि सागरोपम की मोहनीय कर्म की स्थिति को तोड़ता है उसके बाद सम्यक्त्व प्राप्त करता है। सम्यक्त्व प्राप्ति के समय भी उसके एक कोड़ाकोड़ सागरोपम लगभग स्थिति के कर्म होते हैं।

आध्यात्मिक उत्क्रांति की दृष्टि से सम्यक् दर्शन (बोधी) का अत्यधिक महत्त्व है। भगवान महावीर के जीव ने अन्य जीवों की भांति अनेक जन्म मरण किये। उनकी परिगणना करना संभव नहीं है किंतु जब भगवान महावीर के जीव ने सर्व प्रथम बोधि लाभ प्राप्त किया तो वे परित संसारी हो गये। आत्म साधना की एक दिशा उन्हें मिल गई। तभी से उनके 27 भवों की गणना की गई है।

भगवान महावीर के जीव ने मार्ग भूले हुए संतों को मार्ग बताया। इसी प्रकार की घटना तथागत बुद्ध के भी पूर्व भव में आती है। जब बुद्ध पूर्व भव में सुमेध पंडित थे तब उन्होंने दीपंकर बुद्ध के लिए मार्ग तैयार किया था और दीपंकर ने उनके लिए भविष्यवाणी की थी। इन दोनों प्रसंगों में मार्ग की घटना सामान्य रूप से उपलब्ध है। नयसार और सुमेध पंडित दोनों बाह्यमार्ग बताते हैं और संतों द्वारा उन्हें आन्तरिक विशुद्धि का मार्ग मिलता है। यह समानता ध्यान देने योग्य है।

सम्यक्त्व प्राप्ति का प्रथम भव भगवान महावीर का, उसके विवेचन में उल्लेख आता है, मुनियों ने नयसार से कहा—तुमने हमें रास्ता बताया है। हमारी खूब सेवा की है, हम भी तुम्हें रास्ता बता दें।

नयसार ने नम्रता पूर्वक कहा—हां महाराज अवश्य बताइये। मुनियों ने उसे धर्म का रहस्य बताते हुए कहा सरलता, शांति और समता, यही धर्म का बीज है। देव, गुरु और धर्म की भक्ति करो, जिससे जीवन का कल्याण होगा।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है श्रद्धा के बिना सम्यक्त्व नहीं, सम्यक्त्व बिना सम्यक् ज्ञान नहीं, सम्यक् ज्ञान बिना सम्यक् चारित्र नहीं, सम्यक् चारित्र बिना कर्म का नाश नहीं और कर्म क्षय बिना मुक्ति नहीं अतः श्रद्धा का महत्त्व है।

इसलिए स्तुतिकार ने कहा जिनकी मधुर धर्मोपदेशना में लाखों-लाखों व्यक्तियों ने मिथ्यात्व को छोड़कर कषाय रूपी जंगल को दूर किया, सम्यक्त्व की वर्षा की वे महान उपदेष्टा पार्श्वनाथ भगवान जिनकी मैंने स्तुति की है वे भव-भव में मुझे बोधि का वरदान दें ताकि मैं शीघ्र मोक्ष मंजिल का वरण करने में समर्थ बन सकूं। कहा भी गया है–

सिद्धा जैसा जीव है, जीव सोइ सिद्ध होय।
कर्म मेल का आंतरा, बूझे बिरला कोय।।

जिसे जीव के निर्मलत्व में सिद्धत्व की आस्था हो उसे सिद्धत्व का उपाय भी प्राप्त हो गया समझो। यह आत्म प्रतीति साधक का महत्त्वपूर्ण गुण है। जैसे वृक्ष में बीजत्व है, प्रथम कक्षा में पठित वर्णमाला विशेष बन जाने पर भी नष्ट-विस्मृत नहीं होती किंतु विभिन्न तरीकों से उसका उपयोग होता रहता है। वैसे ही आत्म प्रतीति, निश्चय संबुद्ध दशा परमात्म दशा में भी बनी रहती है। यही कारण है कि भगवान पार्श्वनाथ के विशेषणों में संबुद्धात्मा विशेषण विवर्णित है।

बोधि प्राप्ति के उपाय

1. दृष्ट (देखने से)–श्रेयांस ने भगवान ऋषभ के दर्शन से बोधि प्राप्त की।
2. श्रुत (सुनने से)–आनंद और कामदेव ने सुनकर बोधि प्राप्त की।
3. अनुभूत (अनुभूति से)–वल्कलचीरी को पिता के उपकरणों से बोधि प्राप्त हुई।
4. क्षय (कर्मों के क्षय से)–चण्डकौशिक को कर्मों के क्षय से बोधि प्राप्त हुई।
5. उपशम (कर्मों के उपशम से)–अंगऋषि को कर्मों के उपशम से बोधि की प्राप्ति हुई।
6. प्रशस्त मन, वचन व काया के योग से–प्रसन्न चन्द्र राजर्षि को बोधि की प्राप्ति हुई।

तीर्थंकरों के बोधि प्राप्ति का कारण

तीर्थंकर	–	**बोधि प्राप्ति का कारण**
1. भगवान ऋषभ प्रभु	–	मुक्ति से पूर्व 13वें भव में घृत दान से बोधि प्राप्त की।
2. भगवन अजित प्रभु	–	पूर्वजन्म में तपस्या से बोधि प्राप्त की।
3. भगवान संभव प्रभु	–	पूर्वजन्म में धर्म दलाली व शुद्ध दान (सुपात्र दान) से बोधि प्राप्त की।
5. भगवान सुमति प्रभु	–	पुरुष सिंह राजकुमार के भव में नंदन मुनि के उपदेश से बोधि प्राप्त की।
21. भगवान नेमि प्रभु	–	संसार की नश्वरता का चिंतन करते हुए बोधि प्राप्त की।
20. भगवान मुनिसुव्रत प्रभु	–	नंदन मुनि के उपदेश, प्रवचन से बोधि प्राप्त की।
23. भगवान पार्श्वप्रभु	–	हरिशचन्द्र आचार्य के उपदेश से बोधि प्राप्त की।
24. भगवान महावीर	–	मोक्ष प्राप्ति से पूर्व 27वें भव में सुपात्र दान से बोधि प्राप्त की।

बोधि प्राप्ति के पश्चात भगवान ऋषभ के 13 भव, भगवान शांतिनाथ 12 भव, भगवान मुनिसुव्रत के नौ भव, भगवान अरिष्टनेमि के 9 भव, भगवान पार्श्व के 10 भव, भगवान महावीर के 27 भव तथा शेष सभी तीर्थंकरों के तीन भवों का उल्लेख है।

नोट–सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात उपरोक्त भवों की गणना केवल पंचेन्द्रिय भवों की है अन्य भवों की गणना नहीं है। इन भवों में शुभ और अशुभ दोनों प्रकार का पुरुषार्थ होता रहता है।

निष्कर्ष

ज्ञानियों की दृष्टि में ज्ञान अमृत होते हुए भी समुद्र से प्रकट नहीं हुआ है। समुद्र से पैदा हुआ अमृत भी मनुष्य को मृत्यु से नहीं बचा सकता पर ज्ञानामृत मनुष्य को अमर बना सकता है। ज्ञान रसायन होते हुए भी औषधि से बना हुआ नहीं है। औषधि जनित रसायन व्यक्ति को चिर युवा नहीं बना सकता पर ज्ञान रसायन व्यक्ति को अक्षय यौवन प्रदान कर सकता है। ज्ञान ऐश्वर्य होते हुए भी उसे हाथी घोड़ा, सोना, चांदी की अपेक्षा नहीं है। हाथी, घोड़ा, सोना, चांदी का ऐश्वर्य मनुष्य को निर्भीक नहीं बना सकता पर ज्ञानैश्वर्य जीव को सदैव प्रतिसमय निर्भयता अर्पण करता है।

ऐसा ज्ञान प्रकट होता है आत्मा में और उसके प्रकट होने का साधन है–देव, गुरु व धर्म की उपासना। यदि सुमेरु पर्वत की नींव एक हजार योजन नहीं होती तो वह शाश्वत नहीं होता। तात्पर्य यह है आधारशिला मजबूत होनी चाहिए। धर्म के क्षेत्र में भी सम्यक् दर्शन रूपी आधारशिला को पहले से ही पक्का बना लेना आवश्यक है। क्योंकि उसी से ज्ञान सम्यक् बनता है और चारित्र फलवान बनता है।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी लाडनूं

गतांक से आगे

फणी ने मस्तिष्क पर फण फैलाया

महाराष्ट्र की घटना है। उस दिन यात्रा संघ का पड़ाव छोटे से गांव में था। साध्वियों का प्रवास एक छोटे से स्कूल में था। रात्रि के लगभग नौ बजे थे। साध्वी कनकप्रभाजी कमरे के बाहर बरामदे की दीवार से सटकर तन्मयपूर्वक पुस्तक पढ़ रही थी। अचानक किसी का ध्यान बरामदे की छत की ओर गया। एक बड़ा सांप साध्वीश्री के सिर पर फण फैलाए दीवार से नीचे लटक रहा था। ज्योंही सांप-सांप की आवाज हुई, चारों ओर हलचल हो गई और सांप दीवार के अंदर घुस गया। उस सांप को अनेक लोगों ने देखा था, इसलिए चर्चा का बाजार गरमागरम हो गया। वहां उपस्थित कमलेश चतुर्वेदी ने टीपू सुल्तान का ऐतिहासिक प्रसंग सुनाते हुए बताया—'सांप फण फैलाकर जिसे संरक्षण देता है, वह व्यक्ति राजा बनता है।' साध्वी कनकप्रभाजी के उज्ज्वल भविष्य के शुभ संकेत की घटना, जिसे देखकर/सुनकर सभी विस्मित हो गए, लेकिन साध्वी कनकप्रभाजी के अनाकांक्षी मन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ, क्योंकि उन्हें न पद की चाह थी और न यश की।

पट्ट खींच लो, उस पर खड़ी हो जाओ

आचार्यश्री तुलसी का प्रवास महाराष्ट्र की अंतिम सीमा और आंध्रप्रदेश के प्रवेश द्वार बाघ नदी पर था। वहां साध्वीप्रमुखा लाडांजी के स्वर्गारोहण का संवाद मिला। इस घटना के कुछ समय बाद साध्वी कनकप्रभाजी ने एक स्वप्न देखा। उनको ऐसा अनुभव हुआ कि हम कई साध्वियां साध्वीप्रमुखाजी के दर्शन करने जा रही हैं। एक स्थान पर पहुंच कर उन्होंने देखा कि साध्वीप्रमुखाजी पट्ट पर पट्ट लगाए बहुत ऊंचे विराजमान हैं। सभी ने 'तिक्खुत्तो' के पाठ से तीन बार वन्दना की। साध्वी कनकप्रभाजी ने कहा—'आपके चरणों के मस्तक लगाकर वंदना कैसे करूं?' साध्वीप्रमुखाश्री लाडांजी ने मुस्कुराते हुए वात्सल्य के साथ कहा—'देखती क्या हो? पट्ट खींच

लो। उस पर खड़ी हो जाओ और वन्दना कर लो।' साध्वीजी ने साध्वीप्रमुखाजी के कथनानुसार पट्ट खींचा और उस पर खड़ी होकर वंदना कर ली। घटना बताती है कि साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने अपना पट्ट साध्वी कनकप्रभाजी को लेने का संकेत प्रदान किया।

'क अक्षर वाली साध्वी' साध्वीप्रमुखा बनेगी

साध्वीप्रमुखाश्री लाडांजी के दिवंगत होने के बाद लगभग बाईस (22) महीने तक साध्वीप्रमुखा पद रिक्त रहा। यद्यपि तेरापंथ धर्मसंघ में इस विषय के निर्णय का अधिकार एक मात्र आचार्य का होता है। इस विषय में न किसी का चिन्तन काम आता है और न किसी से सलाह ली जाती है, पर संघ के सदस्यों के मन में जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। इसी संदर्भ में मुनिश्री छत्रमलजी ने ज्योतिष विद्या के जानकार श्रीडूंगरगढ़ के श्रावक

मन्नालालजी नवलखा के सामने जिज्ञासा प्रस्तुत की। उन्होंने कहा—'आचार्यवर यह निर्णय अभी नहीं करेंगे। जब भी करेंगे साध्वीप्रमुखा पद पर 'क' अक्षर वाली साध्वी आएगी और वह बहुत योग्य होगी।'

नोट कर लें

गंगाशहर निवासी कोलकाता प्रवासी तेरापंथ धर्मसंघ के वरिष्ठ श्रावक खेमचंदजी सेठिया दक्षिण यात्रा में व्यवस्था का पूरा दायित्व संभाल रहे थे। लगभग चार वर्षों की सुदीर्घ अवधि में उन्होंने अधिकांश समय गुरु चरणों में बिताया। उनकी धर्मपत्नी श्राविका गुलाबदेवी सेठिया भी प्रायः सेवा में ही रहती। इस संदर्भ में जब भी चर्चा चलती कि साध्वीप्रमुखा पद पर कौन साध्वी आएंगी? वे कहती—'कोई कितनी हीं उड़ान भर ले, पर मेरा अन्तर्मन कहता है कि साध्वीप्रमुखा पद तो साध्वी कनकप्रभाजी को मिलेगा, आप नोट कर लें।' गुलाबदेवी के इन्ट्यूशन से सहज निकली भविष्यवाणी शत-प्रतिशत सिद्ध हुई।

साध्वी कनकप्रभाजी अपने करणीय कार्यों में जागरूक और अन्य सभी चर्चाओं से उपरत थी। उनको न पद से मतलब था और न नाम से। इतने संकेत मिलने के बाद भी उन्होंने किसी पर यकीन नहीं किया। वे निर्लिप्त, निस्पृह, निर्द्वन्द्व भाव में मस्त और व्यस्त थी। यदि उनके मन और मस्तिष्क में हल्की-सी भी कल्पना आ जाती तो वे साध्वीप्रमुखा का अभिनन्दन पत्र लिखने नहीं बैठती। सूर्योदय के समय साध्वी समाज वंदना करने पहुंचा, तब आचार्यवर ने उद्घोषणा की कि आज मुख्य प्रवचन के समय साध्वियों की व्यवस्था करनी है। सभी साध्वियों की उपस्थिति अनिवार्य है।

अपने स्थान पर आते ही उस समय व्यवस्था का दायित्व वहन करने वाली साध्वियों ने आवश्यक करणीय कार्य के लिए एक-एक साध्वी को जिम्मेदारी सौंपी। उस क्रम में साध्वी कनकप्रभाजी को नई साध्वीप्रमुखा के लिए अभिनन्दन पत्र लिखने का दायित्व सौंपा गया। उन्होंने तत्काल कॉपी-पैन हाथ में लिया और लिखना प्रारंभ किया, किंतु अन्य आवश्यक काम होने के कारण वे उसे छोड़कर दूसरे काम में प्रवृत्त हो गई। तभी वरिष्ठ साध्वीजी ने जल्दी लिखने के लक्ष्य से साध्वी जयश्री को कहा। उन्होंने अभिनन्दन पत्र लिखकर सौंप दिया।

आचार्यवर का संकल्प और सपना

वि.सं. 2028 का चातुर्मास लाडनूं में संपन्न कर आचार्यवर मर्यादा महोत्सव के लिए गंगाशहर पधारे। वहां बृहद मर्यादा-महोत्सव होने से अच्छी संख्या में साधु-साध्वियों की उपस्थिति थी। मर्यादा-महोत्सव हमारे संगठन, आचार और व्यवहार पक्ष को शक्तिसम्पन्न बनाने वाला महापर्व है। लगभग 500 साध्वियों की सार-संभाल के दायित्व निर्वहन में साध्वीप्रमुखा का होना एक अनिवार्य अपेक्षा थी। आचार्यश्री तुलसी फौलादी संकल्प के धनी महापुरुष थे। गंगाशहर मर्यादा-महोत्सव से पहले होने वाली साधु-साध्वियों की संगोष्ठी में साध्वियों की भावी व्यवस्था के संदर्भ में अपना संकल्प और सपना प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा—'आचार्य का सर्वोपरि दायित्व होता है—योग्य उत्तराधिकारी का चयन। तेरापंथ धर्मसंघ के सभी आचार्य अपने इस दायित्व के प्रति सजग रहे हैं। कितने व्यक्तित्वों को वे अपने अनुभव की कसौटी पर कसते हैं। उस कसौटी पर खरा उतरने वाला ही आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो सकता है।

मैं केवल उत्तराधिकारी के मनोनयन की दृष्टि से ही नहीं, सुयोग्य साध्वीप्रमुखा की नियुक्ति हेतु भी प्रारंभ से सजग रहा हूं। तेरापंथ धर्मसंघ का आचार्य बनते ही मैंने योग्य साध्वीप्रमुखा के चयन की बात सोची। मैं चाहता था आने वाले युग की अपेक्षा के अनुसार एक युवा और प्रबुद्ध साध्वी साध्वीप्रमुखा पद पर आए, जो युग की आवाज सुन सके, समझ सके और युग के अनुरूप नेतृत्व दे सके। मेरे सुदीर्घ शासनकाल में मैंने कई साध्वियों पर दृष्टि केन्द्रित की। कई साध्वियों को परखा और इसी उद्देश्य से निकाय व्यवस्था का भी प्रयोग किया। इसी तलाश और परख के लम्बे सफर के बाद जो साध्वी मेरी दृष्टि में सर्वाधिक योग्य सिद्ध हुई है, जो मेरी परीक्षा की कसौटी पर खरी उतरी है, उसे मैं यथाशीघ्र साध्वीप्रमुखा पद पर मनोनीत करना चाहता हूं।'

अष्टम साध्वीप्रमुखा की नियुक्ति

वि.सं. 2028 माघ कृष्णा त्रयोदशी का शुभ दिन। भारत के विभिन्न सुदूर प्रान्तों से पदयात्रा कर गुरु सन्निधि में पहुंचे सैकड़ों अमल-धवल साधु-साध्वियों के समूह और हजारों-हजारों श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति में आचार्यवर ने प्रवचन के मध्य उद्घोषणा करते हुए कहा—'आज मैं स्वर्गीया साध्वीप्रमुखा लाडांजी के दिवंगत होने के बाद रिक्त हुए स्थान को पुनः महिमामण्डित करना चाहता हूं।'

धर्म परिषद में समुपस्थित हजारों नयन और कान एक साथ उत्सुक हो निर्निमेष बन गए। आचार्यवर ने ज्योंही साध्वी कनकप्रभाजी के नाम की घोषणा की, जनता के दिमाग सक्रिय हो उठे—कौन साध्वी कनकप्रभा? अकल्पित, अपरिचित-सा नाम सुन उत्कन्धर हो सभी उतावले हो उठे साध्वी कनकप्रभाजी की एक झलक पाने के लिए। साध्वी-परिषद की अंतिम पंक्ति में बैठी साध्वी कनकप्रभाजी अपना नाम सुनकर एक बार

स्तब्ध-सी रह गई। वे स्वयं विश्वास नहीं कर पा रही थी कि यह स्वप्न है या हकीकत? गुरुदेव का संकेत पा उन्हें आगे बुलाया गया। वे सहमी-सी सिकुड़ी-सी आचार्यवर के सामने बद्धांजलि खड़ी हो गई। परमाराध्य आचार्यश्री ने उन्हें साध्वीप्रमुखा पद की वंदना कराई और लिखित नियुक्ति पत्र और नया रजोहरण प्रदान किया।

नियुक्ति पत्र की भाषा इस प्रकार है—

।।अर्हम्।।

श्री भिक्षु—भारीमाल—ऋषिराय—जयजश—मघवा—माणक—डालचंद—कालूगुरुभ्योनमः।।

नियुक्ति पत्र

आज विक्रम संवत 2028 माघ कृष्णा 11 बुधवार को मैं सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति साध्वीप्रमुखा लाडांजी के स्थान पर साध्वी कनकप्रभा को नियुक्त करता हूं। साध्वी कनकप्रभा मेरे निर्देशानुसार साध्वी संघ की तटस्थ एवं व्यापक दृष्टि से व्यवस्था व सार-संभाल करेगी। मेरा विनीत साध्वी-समाज साध्वीप्रमुखा के आदेश-निर्देश का अन्तःकरण से पालन करेगा।

गंगाशहर (राजस्थान) आचार्य तुलसी
12 जनवरी, 1972

इस नियुक्ति पत्र को आचार्यश्री ने 12 जनवरी 1972 तदनुसार माघ कृष्णा ग्यारस को लिखा था जबकि आचार्यप्रवर ने साध्वीप्रमुखा की नियुक्ति 14 जनवरी 1972, वि.सं. 2028 माघ कृष्णा त्रयोदशी को की। तेरापंथ धर्मसंघ ने पहली बार साध्वीप्रमुखा पद की नियुक्ति का मनभावन दृश्य देखा। लगभग तीन घंटे तक वर्धापना/अभिवंदना का कार्यक्रम बड़े उल्लासमय वातावरण में चला। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने अपने प्रथम संक्षिप्त वक्तव्य में कहा—'आचार्यश्री ने आज साध्वी संघ को निश्चिंत बना दिया, पर मेरी निश्चिंतता तोड़ दी। मेरे जैसी एकान्तप्रिय, अपने आप में रहने वाली अल्पवयस्क साध्वी पर आपने भरोसा किया है। आपका यह विश्वास खण्डित न हो, अतः मैं संकल्प करती हूं कि उस दिशा में सतत जागरूक रहूंगी।' ज्ञातव्य है कि उस समय साध्वीप्रमुखाश्रीजी मात्र 30 वर्ष की थी और उन्हें दीक्षित हुए केवल ग्यारह वर्ष ही हुए थे। उस मंगल अवसर पर आचार्यवर ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा—'साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा का अकल्पित चयन हुआ, पर सलक्ष्य हुआ। पता नहीं क्यों, मेरी धारणा बन गई थी कि युगीन साध्वी समाज के लिए यह वरदान सिद्ध हो सकती है। इसी आत्मविश्वास के आधार पर मैंने इसको इस आसन पर प्रतिष्ठित किया है।'

व्यक्तित्व सम्पदा

साध्वीप्रमुखा श्री कनकप्रभाजी का व्यक्तित्व आकर्षक, प्रभावशाली और बहुआयामी था। गेहुआं रंग, सुगठित शरीर, चमकीले और गहराई तक झांकते सम्मोहक नेत्रयुगल, शान्त-सौम्य-स्मित मुस्कान बिखेरती मुखाकृति, संयत-मधुरवाणी, वात्सल्य और कल्याण से परिपूर्ण हृदय, आशीर्वाद की मुद्रा में ऊपर उठा हाथ सबको संरक्षण देता प्रतीत होता था। उनका अंतरंग व्यक्तित्व अनेक श्रेष्ठताओं का समवाय था। अध्यात्म निष्ठा, स्फटिक-सी उजली संयम साधना, संयत मृदु व्यवहार, श्रमशील सुव्यवस्थित चर्या, सुनियोजित जीवनशैली, विनम्रता, सहिष्णुता, सक्रियता, श्रद्धा, सेवा और समर्पण के पुण्य अणुओं से बना बरगद-सा विशाल उनका आंतरिक व्यक्तित्व था। जीवन के हर मोड़ पर आने वाली अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति से वे कभी हारी नहीं, प्रत्युत् स्वयं को समायोजित कर उन्हें नया अर्थ प्रदान करती रही।

जीवन व्यवहार का सौन्दर्य बढ़ाने वाली छोटी से छोटी बातों को अपनी नजरों से वे ओझल नहीं होने देतीं। उनकी सुदक्ष मेधा गंभीर से गंभीर ज्ञान राशि को प्राप्त करने में सक्षम थी। वे श्रम की बैसाखियों को सदा अपने हाथ में रखती थी। उनकी चैतन्यमयी ग्रहणशीलता उन्हें हर क्षण समृद्ध बनाने वाली थी। कर्मशीलता का शाश्वत सौन्दर्य कुदरत ने इनको वरदान में दिया था। समय का सार निकालने में साध्वीप्रमुखाश्रीजी माहिर थी अथवा एक वाक्य में कहा जाए तो वे अप्रमत्त साधिका थीं।

अध्यात्म की प्रज्वलित दीपशिखा

साध्वीप्रमुखाश्रीजी अध्यात्मनिष्ठ आराधिका थी। अध्यात्म के रुचक प्रदेशों पर उनकी जीवन-यात्रा प्रतिष्ठित थी। जीवन-चर्या हो या चिन्तन-चर्या, लेखन का प्रवाह हो या पैरों की गतिशीलता, आत्मकल्याण का उपक्रम हो या लोककल्याण का, उनका मन और मस्तिष्क अध्यात्म की परिधि के इर्द-गिर्द केन्द्रित रहता था। साध्वीप्रमुखाश्रीजी का जीवन पदार्थ अथवा सुविधा सापेक्ष कम और अध्यात्म सापेक्ष अधिक था। यही कारण था कि पदार्थ कैसा है? इसकी परिक्रमा वे कभी नहीं करतीं। उसे मात्र साधन मानकर उसका उपयोग करना उन्हें अभीष्ट था। सुविधा के स्थान पर उनकी कष्ट सहिष्णुता जागृत थी। बहुधा मौसम के प्रतिकूल स्थान का चयन कर तन और मन को तदनुरूप ढालने में वे सिद्धहस्त थीं। अध्यात्मविद् आचार्यों ने साधना के कुछ पैरामीटर दिए हैं—

थोवाहारो थोवभणिओ, जो हवइ थोवनिद्दो य।
थोवोवहिउवगरणो तस्स हु देवावि पणमंति।।

जो व्यक्ति आहार-संयम, वाणी-संयम, निद्रा-संयम तथा उपधि-उपकरण-संयम को साध लेता हैं, दिव्य शक्तियां भी उस अनासक्त चेतना को नमन करती हैं।

अनुत्तर खाद्य-संयम

भोजन के संदर्भ में सरस, नीरस, मनोज्ञ-अमनोज्ञ, ठंडा-गर्म, रुचि-अरुचि से उपरत चेतना का नाम था—साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा। खाद्य पदार्थ कड़वा, खारा, दुर्गन्धयुक्त कैसा भी आए, उनके हाव-भाव से प्रायः कोई अभिव्यक्ति नहीं होती। न ही कोई प्रतिक्रिया व्यक्त होती और न अन्यमनस्कता दिखाई देती। उनकी आकृति पर सदा एक जैसी समरसता, सहजता और प्रसन्नता बनी रहती थी।

वर्षों पहले का एक प्रसंग है—प्रातः राश का समय था। उस समय साध्वीप्रमुखाश्रीजी दूध में चीनी का उपयोग करते थे। गोचरी में पीसी हुई मिश्री समझकर किसी ने भूल से फिटकरी बहरा दी। आहार परोसने वाली साध्वीजी ने दूध में वह मिला दी। उन्होंने सहजता से पयपान कर लिया। न चेहरे पर शिकन, न शिकायत, न उपालंभ। सब कुछ सदा की भांति यथावत रहा। अवशेष रहे दूध को जब दूसरी साध्वी पीने लगी, तब पता चला कि इसमें मिश्री नहीं, फिटकरी है। जिससे भूल हुई, वह साध्वी घबरा गई, पर साध्वीप्रमुखाजी ने वैराग्य के निकष पर परीक्षित शब्दों में कहा—'खारा, मीठा, कड़वा यह तो पदार्थ का स्वभाव है। आज तो स्वयं की अस्वाद वृत्ति को परखने का सहज अवसर मिला है।'

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने लम्बी तपस्याएं भले नहीं की, पर उनका अनुत्तर खाद्य संयम साधना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला था। इस संदर्भ में उनका जीवन एक प्रयोगशाला कहा जा सकता है। उनको मनोज्ञ, रुचिकर, स्वादिष्ट—ये शब्द साधक की दृष्टि से बहुत बौने और अनपेक्षित लगते थे, क्योंकि उनका भोजन करने का उद्देश्य मात्र जीवनयापन था। अरस, विरस, सरस पदार्थों के प्रति बचपन से जो समानता का भाव रहा था, वह रसनेन्द्रिय पर विजय पाने का सुखद अभियान कहा जा सकता है। उन्होंने 'यह पदार्थ अभीष्ट है'—ऐसा कहकर अथवा मंगाकर कभी नहीं खाया, बल्कि जो भी, जैसा भी, जितना भी गोचरी में आ गया, उसे उदरस्थ कर संतुष्टि का अनुभव किया। वे अतिशय अकंप संकल्पी थीं, जो अपने सुचिंत्य चिंतन को कभी श्लथ नहीं होने देती। संकल्पों का क्रम स्वास्थ्य आदि की विशेष स्थिति को छोड़कर अनवरत जारी रहा—

- एक बार के भोजन में नौ द्रव्य से अधिक नहीं लेना।
- हाथ धोने के बाद कुछ नहीं खाना।
- आहार के निश्चित समय के अलावा बीच में औषध के सिवाय कुछ नहीं लेना।
- तत्कालीन व्यवस्था के अनुसार उन्होंने साध्वी जीवन के प्रारंभिक 15 वर्षों तक कभी मध्याह्न की गोचरी से पहले कुछ नहीं खाया। भले बारह बजे हो, भले दो बजे हो।
- प्रायः प्रतिवर्ष श्रावण महीने में विशेष प्रयोग करती रहती थी जैसे—
- कभी पूरे श्रावण महीने में छह विगय वर्जन। कभी पूरे श्रावण महीने में एकाशन। कभी पूरे श्रावण महीने में विगय वर्जन के साथ प्रथम प्रहर करना। कभी आछ का पानी पीना और एक अनाज का उपयोग करना। एक बार 27 दिन तक अन्न परिहार और सफेद पदार्थ का उपयोग किया और उसका समापन तेले से किया।
- श्रावण महीने में तीन बार पहले दिन एक द्रव्य, दूसरे दिन दो द्रव्य यावत् पन्द्रहवें दिन पन्द्रह द्रव्यों का उपयोग किया। इसी क्रम से पुनः पन्द्रह से प्रारंभ कर महीने के अंतिम दिन एक द्रव्य लेकर ऊनोदरी तप का प्रयोग किया।
- साध्वी जीवन के प्रारंभ से ही उन्होंने अष्टमी-चतुर्दशी को एकाशन करने का संकल्प किया। लगभग 40 वर्ष तक एक महीने में चार एकाशन किए।
- परमाराध्य गुरुदेवश्री तुलसी की पुण्यतिथि आषाढ़ कृष्णा तृतीया को लगभग 17 वर्ष तक उपवास किए। इसी प्रकार आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की मासिक पुण्यतिथि वैशाख कृष्णा एकादशी को सात वर्ष तक उपवास का क्रम चला। बाद में अस्वस्थता के कारण उपवास नहीं होते। प्रायः छह विगय वर्जन करती।
- कालूगणी की षष्ठी के दिन संवत्सरी के पारणे के अतिरिक्त छह विगय नहीं लेतीं।
- वि.सं. 2054 से कढ़ाई विगय का त्याग था। प्रायः एक विगय दूध या दही के अतिरिक्त किसी विगय का उपयोग नहीं करतीं।

शेष अगले अंक में

शासनश्री साध्वी संघमित्रा

विलक्षण वाग्मी आचार्य वज्रस्वामी

गतांक से आगे

राजा द्वारा नियुक्त न्यायाधिकारी वर्ग ने उभय पक्ष की बात सुनी। एक ओर पुत्र की याचना करती हुई माता अप्रतिकार्य थी, दूसरी ओर धर्मसंघ का प्रश्न था। मुनियों की दृष्टि में माता द्वारा स्वेच्छा एवं साक्षीपूर्वक प्रदत्त पुत्र का दान धर्मसंघ की संपदा हो गई थी। इस जटिल गुत्थी को सुलझाने के लिए राजा ने गंभीर चिंतन किया और बालक सहित उभय पक्ष को अपने सामने उपस्थित होने की आज्ञा दी और कहा 'बालक स्वेच्छा से जिसको चाहेगा, वह उसी का होगा।'

दोनों पक्षों ने इस अभिमत पर बिना ननुनच किए अपनी सहमति प्रदान की। यथासमय राजा के समीप दोनों पक्षों के लोग पहुंच गए। पूर्वाभिमुख होकर राजा बैठा। राजा के दक्षिण पार्श्व में धर्मसंघ बैठा। बाएं पार्श्व में खिलौने और मिठाइयां लेकर परिवार सहित सुनन्दा बैठी। राजा ने कहा—'लौकिक पक्ष में पुरुष ज्येष्ठ माना जाता है। अतः पहला अवसर पिता धनगिरि को देता हूं।'

नागरिक लोग सुनन्दा का पक्ष लेते हुए बोले—'पहला अवसर माता को मिलना चाहिए। माता अपनी संतान के लिए अनेक कष्ट सहती है, उसका पुत्र के प्रति असीम वात्सल्य होता है।' नागरिक लोगों का बहुमत था, अतः पुरुष प्रधान परम्परा होते हुए भी जनता की आवाज का सम्मान कर बालक को मुग्ध करने का पहला अवसर सुनन्दा को दिया गया। परिशिष्ट पर्व के अनुसार सुनन्दा राजा के दक्षिण पार्श्व में बैठी थी।

सुनन्दा हर्षित हुई। वह खिलौने दिखाती हुई तथा मिठाइयों का प्रलोभन देती हुई मिश्री से मधुर स्वर में बोली—'आओ वज्र! मेरी तरफ आओ। मैं कब से तुम्हारी बाट देख रही हूँ। प्रिय पुत्र! मेरी सूनी गोदी को भर दो। मां के स्नेहिल हाथों से बनी इन मिठाइयों को मस्ती से खाओ और इन खिलौनों से खेलो। दीर्घ प्रतीक्षारत मां की भावना को पूर्ण करो। मेरे लाल' ... ... ममतामयी मां द्वारा पुनः-पुनः बुलाने पर भी वज्र नहीं गया। उसने सोचा माँ का पक्ष लेने पर संसार की वृद्धि होगी। धर्म संघ की शरण ग्रहण करने से मेरा कल्याण होगा। मां सुनन्दा का भी कल्याण होगा। वह भी मेरे साथ अवश्य श्रमणी बनेगी। बालक वज्र इस प्रकार अन्तर्मुखी चिंतन करता हुआ उदासीन भाव से मौन बैठा रहा और आंखों से मां को अस्वीकृति की भाषा समझाता रहा।

द्वितीय अवसर पिताश्री मुनि धनगिरि को दिया गया। मुनि ने बालक के सामने रजोहरण रखा और सरल भाषा में वे बोले, 'वत्स! तुम्हारा व्यवहार बताता है तू तत्त्वज्ञ है। सुलभ बोधि है। अध्यात्म के प्रति तेरा सहज अनुराग है। तुम्हारे भावी जीवन के ये निर्णयात्मक क्षण हैं। कर्म रजों का हरण करने वाला यह रजोहरण तुम्हारे सामने है। प्रसन्नमना तूं इसे ग्रहण कर।'

बालक वज्र मृगशावक की भांति ऊपर उछला एवं मुनिजनों के चामराकृति रजोहरण को लेकर उनके उत्संग में बैठ गया। न्याय मुनि धनगिरि को मिला। जय-जय की ध्वनि से दिग्दिगंत गूंज उठा। राजा ने संघ का सम्मान किया। इस समय बालक तीन वर्ष का था।

सरल स्वभावी सुनन्दा ने चिंतन किया 'मेरे सहोदर समित एवं प्राणाधार पति दीक्षित हो गए हैं एवं पुत्र भी श्रमण बनने के लिए संकल्पबद्ध है। मेरे लिए अब यही पथ श्रेष्ठ है।' परम विरक्त-भाव को प्राप्त सुनन्दा आचार्य सिंहगिरि के पास दीक्षित हुई और श्रमणी समूह में सम्मिलित हो गई। ग्रन्थों में श्रमणी संघ की प्रमुखा का नाम-निर्देश प्राप्त नहीं है।

प्रभावक चरित्र, परिशिष्ट पर्व, उपदेशमाला इन ग्रंथों में वज्र की आचार्य सिंहगिरि द्वारा तीन वर्ष की अवस्था में दीक्षा प्रदान करने का तथा विहार आदि के योग्य न होने के कारण उसे शय्यातर के घर पर ही रखने का उल्लेख है। इन ग्रंथों के अनुसार आठ वर्ष की उम्र होने पर वज्र को आचार्य सिंहगिरि ने अपनी

नेश्राय में लिया। पर यह दीक्षा शिष्य स्वीकृति के रूप में संभव है। युगप्रधान पट्टावलियों के अनुसार वज्र की दीक्षा आठ वर्ष की अवस्था में वी. नि. 504 (वि. 34) में हुई। बालक वज्रमुनि कोमल प्रकृति के थे। सहज, नम्र एवं आचार के प्रति दृढ़-निष्ठावान थे। एक बार श्रमण परिवार से परिवृत्त आचार्य सिंहगिरि विहारचर्या में किसी पर्वत की तलहटी में पहुंचे। तभी तीव्रधार तेज वर्षा प्रारम्भ हुई। बादलों की गरजना, झपाझप कौंधती बिजली की चमक प्रलयंकारी थी। चारों ओर पानी-ही-पानी दिखाई देने लगा। नदी नाले पानी से भर गए। आवागमन के रास्ते बंद हो गए। जल-जीवों की विराधना से बचने के लिए श्रमण संघ को गिरिकन्दरा में रुकना पड़ा। उपदेशमाला के अनुसार इस समय ससंघ आचार्य सिंहगिरि अवन्ति के उद्यान में स्थित थे। आहारोपलब्धि की संभावना न देख तपःपूत, क्षमाप्रधान, परीषह विजेता, समता रसलीन श्रमणों ने उपवास स्वीकार कर लिया। प्रभावक चरित्र ग्रंथ के अनुसार वह काल से असामयिक अतिवृष्टि प्रकृति का प्रकोप नहीं अपितु देवमाया थी। बाल मुनि वज्र की परीक्षा के लिए पूर्व भव के मित्र जृंभक देव ने कुतूहलवश इस सघन घनाघन घटा की रचना की थी।

वर्षा के रुकने पर जृंभक देव श्रावक रूप बनाकर आचार्य सिंहगिरि के पास आया और गोचरी की प्रार्थना करता हुआ बोला—'गुरुदेव! हमारा दल आगे बढ़ रहा था। भारी वर्षा के कारण अटवी में रुकना पड़ा। इस जंगल में भी आपके दर्शन हुए यह हमारा अहोभाग्य है। हमने अपने लिए भोजन बनाया है। कृपा कर आप हमें इस अवसर पर संयतिदान का लाभ प्रदान करें। हमारी आपसे एक और प्रार्थना है। लघु शिष्य वज्र मुनि को हमारे यहां गोचरी के लिए आदेश प्रदान कर हमें कृतार्थ करें।'

दयानिधि आचार्य सिंहगिरि ने शिष्य वज्र को गोचरी का आदेश दिया। आचार्य देव की अनुमति पाकर वज्रमुनि माधुकरी वृत्ति के लिए अक्लांत, अखिन्न मन से उठे एवं द्वार तक पहुंचकर रुक गए। नन्हीं-नन्हीं बूंदें तब तक आ रही थीं। पूर्ण वर्षा रुकने पर ईयासमितिपूर्वक मंद-मंद गति से चलते हुए वज्र मुनि आगे बढ़े। मार्ग निर्देश करता हुआ श्रावक वेश में देव भी वज्र मुनि के साथ-साथ चल रहा था। चलते-चलते वज्र मुनि उस बस्ती में प्रविष्ट हुए जो देव निर्मित थी। मानव रूपधारी देव बाल मुनि वज्र को अपनी कुटिया में ले गया एवं भक्तिभाव-पूर्वक दान देने को तैयार हुआ।

बालमुनि वज्र भिक्षा की गवेषणा में जागरूक थे। इस अवसर पर प्रदीयमान सामग्री को अशुद्ध आधाकर्मी, दोषयुक्त देवपिण्ड जानकर उसे लेना अस्वीकार कर दिया। भिक्षा में प्रदीयमान वस्तु द्रव्य से कुष्माण्डपाक द्रव्य, क्षेत्र से मालवा देश में प्राप्त हो रहा है। ग्रीष्मकाल का समय है। भाव की दृष्टि से अनिमिष नयन, अम्लान कुसुम मालाधारी व्यक्ति भोज्य सामग्री प्रदान कर रहा था। दान प्रदाता के चरण धरा से ऊपर उठे हुए थे। इस प्रकार का दान मानव से संभव नहीं था। कुष्माण्डपाक ग्रीष्मकाल में और मालव देश में सर्वथा अप्राप्य था। वज्र की दृष्टि में यह आहार देवपिण्ड था तथा देवता के द्वारा दिया जा रहा था। साधु के लिए देवपिण्ड आहार सर्वथा अकल्प्य है, यह जान वज्रमुनि ने क्षुधा से व्यथित होने पर भी उसे ग्रहण नहीं किया।

जृंभक आदि देवों ने प्रकट होकर वज्र मुनि के उच्चतम साधनानिष्ठ जीवन की प्रशंसा की एवं नाना रूप निर्मात्री वैक्रिय विद्या उन्हें प्रदान की।

उपदेशमाला के अनुसार यह मेघमाला देवकृत नहीं थी। मुनि वज्र के सामने आहार-पानी की गवेषणा में उत्तीर्ण होने का एक अवसर और आया। ग्रीष्मऋतु के मध्याह्नकाल में माधुकरी वृत्ति में व्यस्त बालमुनि वज्र को देखकर जृंभक देव पुनः धरती पर वैक्रिय शक्ति द्वारा मानव रूप बनाकर आया एवं प्रार्थनापूर्वक वज्रमुनि को देव-निर्मित गृह में ले गया। श्रावक रूप में प्रकटीभूत जृंभक देवों ने मुनि को दान देने के लिए घृत निष्पन्न मिष्ठान्न (मिठाई) से भरा थाल रखा। थाल में शरदकालीन मिष्ठान्न थे। गीष्मऋतु में इस प्रकार की मिष्ठान्न सामग्री को देखकर वज्रमुनि संभल गए। उसे देवपिण्ड समझकर उन्होंने ग्रहण नहीं किया।

भाग्यवान व्यक्तियों को पग-पग पर निधान मिलता है। जृंभकदेव वज्रस्वामी के पूर्व जन्म का मित्र था। वज्र मुनि के आचार कौशल से वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ एवं इस समय उन्हें गगनगामिनी विद्या प्रदान की।

सुविनीत मुनि वज्र के पास श्रुत का गंभीर अध्ययन था। एक दिन आचार्य सिंहगिरि शौचार्थ बाहर गए। माधुकरी में प्रवृत्त अन्य मुनि भी उस समय उपाश्रय में नहीं थे। बालमुनि वज्र अकेले थे। नीरव वातावरण से उनके मन में कई प्रकार के भाव जागृत हुए। आगम वाचना प्रदान करने की उत्सुकता जगी। वातावरण को अनुकूल पाया। अपने चारों ओर श्रमणों के उपकरणों को रखकर उन्हें ही श्रमणों का प्रतीक मानकर मुनि

वज्र ने वाचना प्रदान करने का कार्य प्रारम्भ किया। मनोनुकूल कार्य में सहज लीनता आती है। वज्रमुनि वाचना प्रदान कार्य में तल्लीन हो गए। उन्हें समय का भान नहीं रहा। आचार्य सिंहगिरि उपाश्रय के निकट आए। उन्हें मात्रा, बिन्दु सहित आगम पद्यों का स्पष्ट उच्चारण सुनाई दे रहा था। मधुर ध्वनि ने आचार्य सिंहगिरि के मन को मुग्ध कर दिया। आगम के प्रत्येक पद्य का अतीव सुंदर सांगोपांग विवेचन सुनकर आचार्य सिंहगिरि शिशु मुनि वज्र की प्रतिभा पर आश्चर्यविभोर थे।

वज्र मुनि के स्वाध्याय कार्य में बाधा न पहुंचे यही सोच कर आचार्य सिंहगिरि आगे बढ़ते-बढ़ते रुक गए। फिर भी मंद-मंद पदचाप की ध्वनि से और वातावरण की सूक्ष्म हलचल से जागरूक बाल मुनि वज्र को आचार्य देव के आगमन का आभास हुआ। उपकरणों को तत्काल यथास्थान रखकर बाल मुनि वज्र उठे। गुरु के सम्मुख गए। चरणों में झुके। अभिवादन के बाद गुरु के पीछे चलते अपने स्थान पर लौट आए। आचार्य सिंहगिरि अपने शिष्य की योग्यता पर अत्यन्त प्रमुदित हो रहे थे। मन ही मन चिंतन किया—

अप्रकटीकृतशक्तिः शक्तोऽपि नरस्तिरस्कृतिं लभते।
निवसन्नन्तर्दारूणि लङ्घ्यो वह्निर्न तु प्रज्वलितः ।।16।।
(उपदेशमाला विशेषवृत्ति, पृ. 212)

शक्ति गुप्त रहने पर सबल व्यक्ति भी तिरस्कार को प्राप्त होते हैं। अन्तर्निहित अग्निक काष्ठ को लांघा जा सकता है, प्रज्वलित काष्ठ को नहीं।

वैयावृत्यादिषु लघोर्माऽवज्ञाऽस्य भवत्यिति।
ध्यात्वाऽऽहुर्गुरवः शिष्यान् विहारं कुर्महे वयम्।।118।।
(प्रभावक च. पृ. 6)

ज्ञान संपन्न मुनि वज्र की योग्यता अज्ञात रहने पर स्थविर मुनियों द्वारा वैयावृत्य आदि कराते समय किसी प्रकार से वज्र मुनि की अवज्ञा न हो इस हेतु मेरा अन्यत्र प्रस्थान उपयुक्त होगा, यह सोचकर दूसरे दिन आचार्य सिंहगिरि ने शिष्य समूह को देशान्तर जाने का निर्णय सुनाया। आगे कहा 'शिक्षार्थी मुनियों! यात्रा में धर्म प्रचार का कार्य प्रमुख होता है। अध्ययन-अध्यापन के लिए समय कम ही बच पाता है अतः अध्ययनार्थी का क्रम अनवरत रूप से चलता रहे। मेरी इस यात्रा में धर्म-प्रचारक स्थविर मुनि ही सहभागी बन सकेंगे।

अध्ययनार्थी मुनियों ने निवेदन किया—'गुरुदेव! हमें वाचना कौन प्रदान करेंगे?'

आचार्य सिंहगिरि ने लघु मुनि वज्र का नाम वाचना प्रदानार्थ घोषित किया।

अध्यापनार्थ बाल मुनि वज्र का नाम सुनकर वय ज्येष्ठ, पर्याय ज्येष्ठ रत्नाधिक मुनियों को एक बार विस्मय अवश्य हुआ पर दूसरे ही क्षण उन्होंने सोचा **'निर्विचारं गुरोर्वचः'** गुरु के वचन अतर्कणीय होते हैं। विनीत शिष्यों ने 'तथेति' कहकर आचार्य सिंहगिरि के आदेश को निर्विरोध स्वीकार किया।

स्थविर मुनियों से परिवृत आचार्य सिंहगिरि का विहार हुआ एवं मुनि वज्र ने शिष्य समूह को वाचना देनी प्रारम्भ की। लघुवय होने पर भी मुनि वज्र का विशद ज्ञान एवं तत्त्व-बोध प्रदान करने की पद्धति सुंदर थी। मंदमति शिष्य भी सुखपूर्वक मुनि वज्र से वाचना को ग्रहण करने लगे।

कई मुनियों ने अपने पठित पाठों के संदर्भ में भी अनेक प्रकार की जिज्ञासाएं रखीं। प्रश्न-प्रतिप्रश्न किए। मुनि वज्र ने प्रत्येक प्रश्न को बहुत सुंदर, सरल और सुरुचिपूर्ण ढंग से समाहित किया एवं गूढ़ पाठों का भी तार-तार खोलकर रख दिया। मुनि वज्र की वाचना से सभी को पूर्ण संतोष था। कतिपय समय के बाद आचार्य सिंहगिरि का आगमन हुआ। श्रमण वर्ग को मुनि वज्र की वाचना से संतुष्ट पाया। वाचनाचार्य के रूप में मुनि वज्र की नियुक्ति के लिए स्वयं मुनियों ने आचार्य देव से प्रार्थना की।

श्रुत्वेति गुरवः प्राहुर्मत्वेदं विहृतं मया।
अस्य ज्ञापयितुं युष्मान् गुणगौरवमद्भुतम् ।।125।।
(प्रभावक चरित्र, पृ. 6)

आचार्य सिंहगिरि बोले 'मैंने पहले ही मुनि वज्र की योग्यता को परख लिया पर तुम्हें इससे अवगत कराने के लिए मैंने अन्यत्र विहार किया।'

गुरु की दूरदर्शिता पर श्रमण संघ हर्षित हुआ। प्रतिभासंपन्न सुविनीत योग्य शिष्यों को पाकर आचार्य सिंहगिरि को भी पूर्ण तोष था।

मुनि वज्र का उस समय तक ज्ञान गुप्त रीति से ग्रहण किया हुआ था। श्रुतवाचना देने की योग्यता प्राप्त करने के लिए विधिपूर्वक गुरुगम्य ज्ञान होना आवश्यक था। आचार्य सिंहगिरि के पास मुनि वज्र का तपोयोगपूर्वक अध्ययन प्रारम्भ हुआ। शीघ्रग्राही बुद्धि के कारण स्वल्प समय में ही बाल मुनि वज्र गुरु द्वारा प्रदत्त आगम वाचना को ग्रहण करने में सफल हुए।

शेष अगले अंक में

अगला प्रश्न किया गया कि दर्शन (सम्यक्त्व) इसी जन्म तक सीमित रहता है अथवा वह अगले जन्म में भी साथ जाता है अथवा वह वर्तमान जन्म और भावी जन्म दोनों में विद्यमान रहता है? उत्तर दिया गया कि दर्शन (सम्यक्त्व) इस जन्म तक सीमित रह सकता है, अगले जन्म में साथ भी जा सकता है तथा वह वर्तमान जन्म और भावी जन्म दोनों में विद्यमान रह सकता है। क्षायिक सम्यक्त्व एक बार प्राप्त हो जाए तो वह फिर कभी जाता नहीं।

तीसरा प्रश्न किया गया—चारित्र इस जन्म तक ही सीमित है अथवा आगे भी साथ जाता है अथवा तदुभयभविक चारित्र भी होता है? उत्तर दिया गया कि चारित्र इस जन्म तक ही रह सकता है, वह आगे साथ नहीं जा सकता। साधुपन इसी जन्म तक सीमित रहता है, वह आगे के जीवन में साथ नहीं जाता। साधुत्व का स्वीकरण भी एक ही जीवन के लिए होता है। कोई यह पूछ सकता है कि गृहस्थ के धन साथ में आगे नहीं जाता है, इसके लिए उसका मोह न करने का उपदेश दिया जाता है तो साधु के साधुपन भी तो साथ नहीं जाता, फिर साधुत्व का पालन क्यों करना चाहिए? इसका उत्तर यह हो सकता है कि जैसे कोई गृहस्थ सुदूर प्रदेश में कमाई के लिए जाता है और वहां दुकान के माध्यम से बहुत अर्थार्जन करता है, वहां से लौटते समय दुकान साथ नहीं आती, किन्तु कमाई तो साथ आ सकती है। इसी प्रकार साधुपन साथ नहीं जाता, साधुत्व पालते हुए जो संयम और निर्जरा की कमाई करेंगे, उसका लाभ हमारे साथ जा सकता है।

चौथा प्रश्न किया गया कि तप इस जन्म तक ही रहता है, अथवा आगे भी साथ जा सकता है? उत्तर में कहा गया कि तपस्या इस जन्म तक ही सीमित रहती है, आगे साथ नहीं जाती। तप साथ नहीं जाता, किन्तु उसका फल साथ में जा सकता है।

पांचवां प्रश्न किया गया कि संयम इस जन्म तक ही सीमित रहता है या आगे भी साथ जा सकता है? उत्तर में कहा गया कि संयम इसी जन्म तक सीमित रहता है, आगे साथ नहीं जाता। इस प्रकार ज्ञान और दर्शन आगे भी साथ जा सकते हैं, किन्तु चारित्र, तप और संयम आगे साथ नहीं जाते, उनका प्रभाव आगे भी साथ जा सकता है। आदमी को ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और संयम की यथासंभव आराधना करनी चाहिए।

आचार्य महाश्रमण

सारी विशेषताओं से सम्पन्न होना
कठिन हो तो कुछ को चयनित करो और
उन्हें आत्मसात् करने का प्रयास करो।

–आचार्य महाश्रमण

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
(ISO 9001: 2015 प्रमाणित संस्था)
3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता - 700 001
दूरभाष: 033-2235 7956, 2234 3598
email : info@jstmahasabha.org

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा की ओर से प्रकाशक विनोद बैद द्वारा पायोराईट प्रिन्ट मीडिया प्राईवेट लिमिटेड उदयपुर-313003 से मुद्रित तथा 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-700001 से प्रकाशित। संपादक - पुष्पा बैंगानी